सस्ता साहित्य ग्रन्थमाला—ग्रन्थ ७ ।

साहित्य-सुषमा ।

अर्थात्

[हिन्दी पद्य-साहित्य का एक अपूर्व ग्रन्थ]



संग्रहकर्ता

पं० रामदहिन मिश्र काव्यतीर्थ ।



प्रकाशक—

ग्रन्थमाला-कार्यालय

बाँकीपुर



तृतीय संस्करण]   १९२७   [मूल्य आठ आने

पं० देवीदयाल वाजपेयी द्वारा—

"पञ्चानन प्रेस" सप्तसागर बनारस में मुद्रित।

सूचीपत्र ।





वक्तव्य।



हमारे हिन्दी-साहित्य में कैसे अनमोल रत्न भरे पड़े हैं, इसके ज्ञान और लाभ हमारे नवयुवक विद्यार्थियों को बहुत कम होते हैं। इसका कारण यह है कि वे हमारे साहित्य से बहुत दूर रहते हैं। माध्यमिक कक्षा तक के साहित्य में उन्हें कुछ पद्य गद्य के साथ पढने को मिल जाते हैं, पर उच्च कक्षा में पहुँचते ही पहुँचते पद्यों से उनका पिण्ड एक प्रकार छूट ही जाता है। जहाँ कहीं पद्य पाठ की कुछ चर्चा है पर वह नाम मात्र की और वे सिलसिलेवार। उसमें भी व्यक्ति-विशेष की ही कुछ कविताओं के पढाने की प्राय. व्यवस्था दीख पड़ती है न कि कविवर्ग की सकलित कविताओं की। यदि हम दूसरी भाषाओं की ओर दृष्टि उठाते हैं तो इस प्रकार की प्राचीन कवियों की सकलित कविताओं के अनेक ग्रन्थ दीख पडते हैं। पर हमारे साहित्य में इसका एक दम अभाव है। इससे जो उद्देश्य लेकर विश्वविद्यालयों के प्रवेशिका-परीक्षार्थी विद्यार्थियों के लिये 'साहित्यसुधाकर' नामक हिन्दी गद्य साहित्य की पुस्तक निकाली गयी है उसी उद्देश्य से यह भी पुस्तक निकाली जाती है।

आदि प्राचीन तथा मिश्र-बन्धु-विनोद, कविता कौमुदी आदि नवीन संग्रह पुस्तकों तथा सरस्वती आदि पत्र पत्रिकाओं से चुनी हैं। इनका क्रम और परिचय प्रायः मिश्र-बन्धु विनोद के अनुसार ही, यद्यपि उसमें कहीं २ व्यतिक्रम है, रक्खा है। अतएव मैं इस साहाय्य-प्राप्ति के लिये उन सबों का कृतज्ञ हूँ। जिन लोगों ने अपनी २ कविताओं को उद्धृत करने की अनुमति देकर मुझे अनुगृहीत किया है उनको भी हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

ग्रन्थमाला मालाकार

रामदहिन मिश्र।



साहित्य-सुषमा।

हिन्दी के आदि महाकवि चन्द वरदाई कृत।

मंगलाचरण।

नमो देव देवाधि नमो नाभाय कमल वर।
नमो माल पंकजन नमो वर कन्नल कमल कर॥
नमो नेन वर कमल नमो चित्तह अधिकारिय।
नमो निकट भजनन नमो संसार सुधारिय॥
नमो चन्द नन्दन नवल नंद गेह ब्रह्मण्ड गुर।
दिप्पहि जुदेव देवाधि तुहि मुगति समप्पन तिनहि उर॥१॥

महाकवि मैथिल-कोकिल विद्यापति ठाकुर कृत।

विनय के पद।

माधव बहुत मिनति करि तोय।
देइ तुलसि तिल देह समर्पिनु दया जनि छाडब मोय॥
गनइत दोस गुन लेस न पायबि जब तुहुँ करबि बिचार।
तुहुँ जगत जगनाथ कहायसि जग बाहिर न इ छार॥
किय मानुष पसु पाखी जे जनमिय अथवा कीट पतङ्ग।
करम बिपाक गतागत पुन पुन मति रहु तुअ परसङ्ग॥

हाड़ वड़ा हरि भजन कर, द्रव्य बड़ा कछु देय।
अकल बड़ी उपकार कर, जीवन का फल येह ॥ ४ ॥
देह धरे का गुन यही, देह २ कछु देहु।
बहुरि न देही पाइये, अबकी देहु सो देहु ॥ ५ ॥
सत ही में सत बाँई, रोटी में ते टूक।
यह कबीर ता दास को, कबहुँ न आवै चूक ॥ ६ ॥

सन्तोष।

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवाँ वे परवाह।
जिनको कछू न चाहिये, सोई साहंसाह ॥ १ ॥
मागन गये सो मरि रहे, मरे सो माँगन जाहिं।
तिनसे पहिले वे मरे, होत करत जो नाहिं ॥ २ ॥
गोधन गजधन वाजिधन, और रत्नधन खान।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान ॥ ३ ॥
मरि जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहि न आवै लाज ॥ ४ ॥

धैर्य।

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय ॥ १ ॥
कबिरा धीरज के धरे, हाथी मन-भर खाय।
टूक एक के कारने, श्वान घरै घर जाय ॥ २ ॥
कबिरा भँवर में बैठि कै, मौचक घना न जोय।
डूबन का भय छाड़िये, करता करै सो होय ॥ ३ ॥
मैं मेरी सब जायगी, तब आवैगी और।
जब यह निश्चल होयगा, तब पावैगा ठौर ॥ ४ ॥

उपदेश के दोहे।

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगो कब्ब॥
या दुनिया में आयके, छाडि देइ तू ऐंठ।
लेना होय सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ॥ २॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजे, और ठगे दुख होय॥ ३॥
जो तोको काँटा बुवे, ताहि बोव तू फूल।
तोहि फूल को फूल है, वाको है तिरसूल॥ ४॥
दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की स्वास से, लोह भसम हो जाय॥ ५॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करै, आपहुँ शीतल होय॥ ६॥
बोलत ही पहचानिये, साहु चोर को घाट।
अतर की करनी सबै, निकसै मुह की बाट॥ ७॥
कथनी मीठी खाँड सी, करनी विषकी लोय।
कथनी तज करनी करै, तो विष से अमृत होय॥ ८॥
साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप॥ ९॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौं आपना, मुझ सा बुरा न होय॥१०॥
दाया दिल में राखिये, तू क्यों निरदय होय।
साईं के सब जीव हैं, कीडी कुजर सोय॥११॥
परनारी पैनी छुरी, मत कोइ लागे अंग।
रावन के दस सिर गये, परनारी के सग॥१२॥

निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
विन पानी साबुन विना, निर्मल करे सुभाय ॥१३॥
तिनका कबहुँ न निन्दिये, जो पाँवन तर होय।
कबहू उडि आँखिन परै, पीर घनेरी होय ॥१४॥
रूखा सूखा खाइ के, ठंढा पानी पीव।
देखि विरानी चूपडी, मत ललचावो जीव ॥१५॥
कबीर गर्व न कीजिये, एक न हँसिये कोय।
अजहूँ नाव समुद्र में, क्या जानें क्या होय ॥१६॥
माँगन मरन समान है, मति कोइ माँगो भीख।
माँगन ते मरना भला, यह सत गुरु की सीख ॥१७॥
आपा तजो और हरि भजो, नख सिख तजो विकार।
सब जिउते निरबैर रहु, साधु मता है सार ॥१८॥
गारी ही सों ऊपजै, कलह कष्ट औ मीच।
हारि चलै सो साधु है, लागि मरै सो नीच ॥१९॥

कर्मगति।

करम गति टारे नाहिं टरी।

मुनि वसिष्ठ से पण्डित ज्ञानी सोध के लगन धरी॥
सीता हरन मरन दशरथ को वन में विपत परी।
कहँ वह फंद कहाँ वह पारधि कहँ वह मिरग चरी॥
सीता को हरि लै गो रावन सुवरन लंक जरी।
नीच हाथ हरिचन्द बिकाने बलि पाताल धरी॥
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग गिरगिट जौनि परी।
पाण्डव जिनके आपु सारथी तिन पर विपती परी॥
दुर्योधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी।

राहु केतु औ भानु चंद्रमा विधि सजोग परी ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो होनी होके रही ॥ १ ॥

चलत का टेढे टेढे टेढे ।
दसो द्वार नरकै में बूडे दुरगन्धों के वेढे ॥
फूटे नैन हृदय नहिं सूझै मति एको नहिं जानी ।
काम क्रोध तृष्णा के मारे बूडि मुये बिन पानी ॥
जारे देह भसम ह्वै जाई गाडे माटी खाइ ।
सूकर स्वान काग के भोजन तन की अहै बडाई ॥
चेति न देखु मुगुध नर बौरे तोते काल न दूरी ।
कोटिन जतन करै बहुतेरे तन की अवस्था धूरी ॥
बालू के घरवा में बेठे चेतत नाहिं अयाना ।
कह कबीर यक राम भजे बिन बूडे बहुत सयाना ॥२॥

मन लागो है मेरो फकीरी में ।
जो सुख पावो नाम भजन में, सो सुख नाहिं अमीरी में ।
भला बुरा सबकी सुन लीजे, कर गुजरान गरीबी में ॥
प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बनि आई सबूरी में ।
हाथ में कूंडी बगल में सोंटा, चारो दिसि जागीरी में ॥
आखिर यह तन खाक मिलैगे, कहत फिरत मगरूरी में ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहिब मिलै सबूरी में ॥३॥

रहना नहिं देश विराना है ।
यह ससार कागद की पुडिया बूद पडे घुल जाना है ।
यह संसार कांट की बाडी उलझ पुलझ मरि जाना है ॥
यह संसार झाड औ झांखर आग लगे बरि जाना है ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो सतगुरु नाम ठिकाना है ॥४॥

भजु मन जीवन नाम सबेरा ।
सुन्दर देह देख जिन भूलो झपट लेत जस बाज बटेरा ।

या देही को गरब न कीजै उड पछी जस लेत बसेरा ॥
या नगरी में रहन न पैहो कोइ रहि जाय न दूर घनेरा ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो मानुख जनम न पैहो फेरा ॥५॥

श्रीमती मीराबाई के भजन ।

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल ।
मोहिनी मूरति साँवरि सूरति नैना बने विशाल ।
अधर सुधारस मुरली राजित उर बैजन्ती माल ॥
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल ।
मीरा प्रभु सन्तन सुखदाई, भक्तबछल गोपाल ॥ १ ॥
पायोजी मैंने राम रतन धन पायो ।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु भवसागर तर आयो ॥
जनम जनम की पूँजी पाई जग में सभी खोवायो ।
खरचे नहिं कोइ चोर न लेवे दिन दिन बढत सवायो ॥
सत की नाव खेवैया सतगुरु भवसागर तर आयो ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर हरख हरख जस गायो ॥२॥
रामनाम रस पीजे मनुआँ राम नाम रस पीजे ।
तज कुसग सतसग बैठ नित हरि चरचा गुण लीजे ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ चित से बहायबु दीजे ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर ताहि के रग में भीजे ॥ ३ ॥
भजि मन चरण कमल अविनासी ।
जेताई दीस धरनि गगन बिच तेताई उठि सब जासी ।
कहा भयो तीरथ ब्रत कीने कहा लिए करवत कासी ॥
इस देही का गरब न करना, माटी में मिलि जासी ।
यो ससार चहर की बाजी साँझ पड़याँ उठ जासी ॥

कहा भयो है भगवाँ पहर्याँ घर तज भए सन्यासी।
जोगी होय जुगति नहिं जानी उलट जनम फिर आसी॥
अरज करौं अबला कर जोरें स्याम तुम्हारी दासी।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर काटो जम की फाँसी॥ ४॥

श्री गुरु नानक जी के पद।

साधो मन का मान तिआगऊ।
काम क्रोध संगति दुर्जन की तातें अहनिशि भागऊ॥
सुख दुख दोनों सम कर जाने आउर मान अपमाना।
हरष शोक तें रहें अतीता तिन जग तत्त्व पछाना॥
(अ) स्तुति निन्दा दोउ तिआगे खोजै पद निर्वाना।
जन नानक यह खेल कठिन है किनहू गुरु मुख जाना॥ १॥

साधो रचना राम बनाई।
इक बिनसे इक अस्थिर माने अचरज लख्यो न जाई।
काम क्रोध मोह बस प्राणी हरि मूरति बिसराई॥
झूठा तन साँचा कर मानेउ जिउ सुपना रैनाई।
जा दीसै सो सकल विनासे जिउ बादर की छाई॥
जन नानक जग जानिऔ मिथ्या रहियो राम सरनाई॥ २॥

नर अचेत पापतें डर रे।
दीन दयाल सकल भय भजन सरन ताहि तुम पर रे॥
बेद पुरान जासु गुन गावत तासो नाम हिये मों धर रे।
पावन नाम जगतमें हरि को सिमिर सिमिर कलिमल सब हरु रे
मानुस देह बहुरि नहिं पावै कछुक उपाय मुक्ति का करु रे।
नानक कहत गाय करुनामय भवसागर से पार उतरु रे॥ ३॥

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा तोही सग समाई॥

लटकन लटकत ललित भाल पर, काजर बिंदु भुव ऊपर री
यह शोभा नैननि भरि देखैं, नहिं उपमा कहुँ भूपर री
कबहुँक दौरि घुटरु बन लटकत, गिरत परत फिरि धावतरी
इत ते नंद बुलाइ लेत हैं उतते जननि बुलावति री॥
दंपति होड करत आपुस में, श्याम खिलौना कीनो री।
सूरदास प्रभु ब्रह्म सनातन, सुत हित करि दोउ लीनो री॥ ६॥

कृष्ण की कथनी।

मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी।

किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहू है छोटी॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।
काढ़त गुहत न्हावत ओछत नागिन सी ह्वै लोटी॥
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी।
सूर श्याम चिरजीवो दोऊ भैया हरि हलधर की जोटी॥ १॥

खेलन अब मेरी जात बलैया।

जबहि मोहिं देखत लरिकन संग तबहि खिजत बलभैया॥
मोसों कहत तात बसुदेव को देवकी तेरी मैया।
मोल लियो कछु दे बसुदेव को करि-करि यतन बटैया॥
अब बाबा कहि कहत नंद को यशुमति को कहै मैया।
ऐसेहि कहि सब मोहिं खिजावत तब उठि चलो खिसैया॥
पाछे नंद सुनत हैं ठाढे हँसत हँसत उर लैया।
सूर नंद बलिरामहिं धिरयो सुनि मन हरख कन्हैया॥ २॥

मातु मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।

मोसो कहत, मोल को लीन्हों तोहि जशुमति कब जायो।
कहा कहौं यहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जात॥
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुम्हरो तात।

गोरे नंद यशोदा गोरी तुम कत श्याम शरीर।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर॥
तू मोहि को मारन सीखी दाउहि कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि यशोमति अति मन रीझै॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई जनमत ही को धूत।
सूर श्याम मो गोधन की सौं हौं माता तू पूत॥३॥

ऊधो का सदेश कथन।

कबहिं सुधि करत गोपाल हमारी।
पूछत नद पिता ऊधो सों अरु यसुदा महतारी॥
बहुतै चूक परी अनजानत कहा अब के पछिताने।
वासुदेव घर भीतर आये मैं अहीर कै जाने॥
पहिले गर्ग कह्यो हुतो हम सों सग देत गयो भूली।
सूरदास स्वामी के बिछुरे रात दिवस भै शूली॥१॥

कह्यो कान्ह सुनु यशुमति मैया।
आवहिंगे दिन चार पाच में हम हलधर दोउ भैया॥
मुरली बेंत विषाण देखियो शृंगी बेर सबेरो।
ले जिनि जाइ चुराइ राधिका कछुक खिलौना मेरो॥
जा दिन ते तुमसे बिछुरे हम कोऊ न कहत कन्हैया।
भोरहि नाहिं कलेऊ कीनो साँझ न पय पीयो ना घैया॥ दूध,
कहत न बनै सदेशो मो पै जननि जितो दुख पायो।
अब हमसों, वसुदेव देवकी कहत आपुनो-जायो॥
कहियो कहा नन्द बाबा सों बहुत निठुर मन कीनो।
सूर हमहिं पहुँचाइ मधुपुरी बहुरो सोध न लीनो॥२॥

मातृ-वत्सलता ।

यशोदा बार बार यों भाखै ।
है कोई व्रज -हितू हमारो चलत गोपालहिं राखै ॥
कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायो ।
सुफलक सुत मेरे प्राण हतन को काल रूप ह्वै आयो
वरु ये गोधन हरो कंस सब मोहि बंदि ले मेलो ।
इतने ही सुख कमल नयन मेरी अँखियन आगे खेलो ॥
बासर बदन विलोकत जीवों निस निज अंक में लाओं ।
तेहि बिछुरत जो जीवों कर्मवश तौ हँसि काहि बुलाओं ॥
कमल नयन गुण टेरत टेरत अधर बदन कुम्हिलानी ।
सूर कहा लगि प्रगट जनाऊँ दुखित नंद जू की रानी ॥ १

संदेसो देवकी सो कहियो ।
हौं तौ धाय तिहारे सुत की मया करत नित रहियो ॥
यद्यपि टेव तुम जानत उनकी तऊ मोहि कहि आवै ।
प्रातहि उठत तुम्हारे कान्हहि माखन रोटी भावै ॥
तेल उबटनो अरु ताते जल ताहि देख भगि जाते ।
जोइ जोई मागत सोइ सोई देती क्रम क्रम करि करि न्हाते ॥
सूर पथिक सुनि मोहिं रैनि दिन बढो रहत उर सोच ।
मेरो अलक लड़ै तो मोहन ह्वै है करत सकोच ॥ २

ब्रजबाला विनय ।

ऊधो अँखिया अति अनुरागी ।
इक टक मग जोवति अरु रोवति भूलेहु पलक न लागी ॥
बिन पावस पावस ऋतु आई देखत हैं विदमान ।
... निर्गुन ज्ञान ॥

सुनि प्रिय सखा श्यामसुन्दर के जानत सकल सुभाइ।
जैसे मिले सूर के स्वामी तैसी करहु उपाइ॥ १॥

हमको हरि की कथा सुनाउ।
ये आपनी ज्ञान गाथा अलि मथुरा ही लै जाउ॥
ये नर नारिन के समुझहिंगी तेरो वचन बनाउ।
पा लागो ऐसी इन बातनि उनही जाइ रिझाउ॥
जा शुचि सखा श्यामसुन्दर को अरु जिय अति सतिभाउ
तो बारक आतुर इन नैनन वह मुख आनि दिखाउ।
जो कोउ कोटि करै कैसेहू विधि विद्या व्यवसाउ॥
तो सुन सूर मीन को जल बिन नाहिन और उपाउ॥

ब्रज विरह निवेदन।

कहा लौं कहिये ब्रज की बात।
सुनहु श्याम तुम बिन उन लोगन जैसे दिवस विहात॥
गोपी गाइ ग्वाल गो सुत वै मलिन बदन कृश गात।
परम दीन जनु शिशिर हिमाहत अंबुज गत बिन पात॥
जा कहु आवत देखि दूरते सब पूछति कुशलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर कर चरनन लपटात॥
पिक चातक घन बसन न पावहिं वायस बलिहि न खात।
सूर श्याम संदेशन के डर पथिक न उहि मग जात॥१॥

विनय के पद।

प्रभु मैं सब पतितन को टीको।
और पतित सब द्योस चार के मैं तो जन्मत ही को॥
बधिक अजामिल गनिका तारी और पूतना ही को।
मोहि छाडि तुम और उधारे मिटै शूल कैसे जीको॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदास कृत 'रामायण' से।

ग्रामीणों का अलौकिक प्रेम।

जे पुर ग्राम बसहिं मगुमाहीं । तिन्हहिं नाग सुर नगर सिहाहीं ॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाए । धन्य पुन्यमय परम सुहाए ॥
जहँ तहँ रामचरण चलि जाहीं । तेहि समान अमरावति नाहीं ॥
पुण्य पुंज मगु निकट निवासी । तिन्हहिं सराहहिं सुर पुरवासी ॥
जे भरि नयन विलोकहिं रामहिं । ... ...
जेहि सर सरित राम अवगाहहिं । तिनहिं देव सुर सरित सराहहिं ॥
जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई । करहिं कल्पतरु तासु बड़ाई ॥
परसि रामपदपद्म परागा । मानति भूरि भूरि निज भागा ॥
दो०—छाँह करहिं घन विबुधगण, बरषहिं सुमन सिहाहिं ॥
देखत गिरि वन विहग मृग, राम चले मगु जाहिं ॥
सीता लषण सहित रघुराई । गाँव निकट जब निकसहिं जाई ॥
सुनि सब बाल वृद्ध नरनारी । चलहिं तुरित गृहकाज बिसारी ॥
रामलषन सिय रूप निहारी । पाइ नयन फल होहिं सुखारी ॥
सजल नयन अति पुलकि शरीरा । सब भये मगन देखि दोउ बीरा ॥
बरणि न जाई दशा तिन केरी । लही रंक जनु सुरमनि ढेरी ॥
एकहिं एक बोलि सिख देहीं । लोचन लाहु लेहु क्षण एहीं ॥
रामहिं देखि एक अनुरागे । चितवत चले जात संग लागे ॥
एक नयन मगु छवि उर आनी । होहिं शिथिल तनु मानस बानी ॥
दो०—एक देखि वट छाँह भलि, डारि मृदुल तृण पात ॥
कहहिं गवाँइय क्षणिक श्रम, गवनब अबहिं कि प्रात ॥
एक कलश भरि आनहिं पानी । अँचइय नाथ ... ... ॥
सुनि प्रिय वचन प्रीति अति देखी । राम कृपालु सुशील विशेषी ॥
जानी सीय श्रमित मनमाहीं । घरिक विलंब कीन्ह वटछाहीं ॥

मुदित नारि नर देखहि शोभा। रूप अनूप नयन मन लोभा॥
एकटक सब जोहहिं चहुँ ओरा। रामचन्द्र मुख चन्द्र चकोरा॥
तरुण तमाल वरण तनु सोहा। देखत काम, कोटि मन मोहा॥
दामिनि वरण लषण सुन नीके। नखशिख सुभग भावते जीके॥
मुनिपट कटिन्ह कसे तूणीरा। सोहत करकमलन धनुतीरा॥

दो०—जटा मुकुट शीसनि सुभग, उर भुज नयन विशाल।
सरद परव भा विधु बदन, लसत स्वेदकण जाल॥

वरणि न जाइ मनोहर जोरी। शोभा अमित मोर मति थोरी॥
राम लषण सिय सुन्दरताई। सब चितवहिं मति मन चित लाई॥
थके नारि नर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे॥
सीय समीप ग्राम तिय जाहीं। पूछत अति सनेह सकुचाहीं॥
बार बार सब लागहिं पाए। कहहिं वचन मृदु सरल सुहाए॥
राज कुमारि विनय हम करहीं। हिय सुभाव कछु पूछत डरहीं॥
स्वामिनि अविनय छमब हमारी। बिलगु न मानव जानि गँवारी॥
राज कुवर दोउ सहज सलाने। इनसे लहि दुति मरकत सोने॥

दो०—श्यामल गौर किशोर वर, सुन्दर सुषमा ऐन।
शरद शर्वरी नाथ मुख, शरद सरोरुह नैन॥

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेह मय मंजुल वानी। सकुचि सीय मन महँ मुसुकानी॥
तिनहिं बिलोकि बिलोकउ धरणी। दुहु सकोच सकुचति वरवरणी॥
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी। बोली मधुर वचन पिक बयनी॥
सहज सुभाव सुभग तन गोरे। नाम लषण लघु देवर मोरे॥
श्यामवर्ण आयत भुज नैना। अति सुन्दर बोलत मृदु बैना॥
बहुरि बदन विधु अंचल ढाँकी। पियतन चितै भौंह करि बाँकी॥
खंजन मञ्जु तिरीछे नयननि। निजपति कहेउ तिनहिं सिय सयननि॥
भई मुदित सब ग्राम बधूटी। रंकन्ह रतन राशि जनु लूटी॥

दो०—अति सप्रेम सिय पाय धरि, बहु विधि देहिं अशीस।
सदा सोहागिनि रहहु तुम, जब लगि महि अहि शीस ॥

पारवती सम पति प्रिय होहू। देवि न हम पर छाँडब छोहू ॥
पुनि २ विनय करहिं करजोरी। जौ इहि मारग फिरिय बहोरी ॥
दरशन देव जानि निज दासी। लखी सीय सब प्रेम पियासी ॥
मधुर वचन कहि कहि परितोषी। जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी ॥
तबहिं लखण रघुबर रुख जानी। पूछे मगु लोगनि मृदुबानी ॥
सुनत नारि-नर भए दुखारी। पुलकित अंग विलोचन बारी ॥
मिटा मोद, मन भए मलीने। विधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने ॥
समुझि कर्मगति धीरज कीन्हा। शोधि सुगम मगु तिन्ह कहँ दीन्हा ॥

दो०—लषण जानकी सहित, तब, गमन कीन्ह रघुनाथ ॥
फेरे सब प्रिय वचन कहि, लिए लाय मन साथ ॥

फिरत नारि नर अति पछताहीं। दैवहिं दोष देहिं मन माहीं ॥
सहित विषाद परस्पर कहहीं। विधि करतब सब उलटे अहहीं ॥
निपट निरंकुश निठुर निशंकू। जेहि शशि कीन्ह सरुज सकलंकू ॥
रूख कलपतरु सागर खारा। तेहिं पठये वन राजकुमारा ॥
जा पै इनहिं दीन्ह बनवासू। कीन्ह बादि [illegible] विलासू ॥
ये विचरहिं मगु बिनु पदत्राना। रचे बादि विधि बाहन नाना ॥
ये महि परहिं डालि कुश पाना। सुभग सेज कत कीन्ह विधाता ॥
तरुतर बास इनहिं विधि दीन्हा। धवल धाम रचि रचि श्रम कीन्हा ॥

दो०—जो ये मुनिपट धर जटिल, सुंदर सुठि सुकुमार।
विविध भाँति भूषण बसन, बादि किये करतार ॥

जो ये कन्द मूल फल खाहीं। बादि सुधादि अशन जगमाहीं ॥
एक कहहिं यह सहज सुहाये। आपु प्रकट भे विधि न बनाये ॥
जहँ लगि वेद कहहिं विधिकरणी। श्रवण नयन मन गोचर बरणी ॥
[illegible] भुवन दशचारी। कहँ अस पुरुष कहा असि नारी ॥

इनहिं देखि, विधि मन-अनुरागा । पटतर योग बनावन लागा ॥
कीन्ह बहुत श्रम, एक न आये । तेहि इर्षा बन आनि दुराये ॥
एक कहहिं हम बहुत न जानहिं । आपुहि परम धन्य करि मानहिं ॥
ते पुनि-पुण्य-पुञ्ज हम लेखे । जे देखहिं देखिहैं जिन देखे ॥

दो०—इहि-विधि कहि कहि वचन प्रिय, लेहि नयन भरि नीर ।
किमि चलिहैं मारग अगम, सुठि सुकुमार शरीर ॥

नारि सनेह विकल सब होहीं । चकई साझ समय जिमि सोहीं ॥
मृदु पद कमल कठिन मग जानी । गहबरि हृदय कहहिं मृदुबानी ॥
परसत मृदुल चरण अरुणारे । सकुचित महि जिमि हृदय हमारे ॥
जो जगदीश इनहिं बन दीन्हा । कस न सुमनमय मारग कीन्हा ॥
जो मांगे पाइय विधि पाहीं । राखिय सखि इन आखिन माहीं ॥
जे नर नारि न अवसर आये । ते सिय राम न देखन पाये ॥
सुनि स्वरूप पूछहिं अकुलाई । अब लगि गये कहा लगि भाई ॥
समरथ धाइ विलोकहिं जाई । प्रमुदित फिरहिं जन्म फल पाई ॥

दो०—अबला बालक वृद्धजन, कर मीजहिं पछिताहिं ।
होहिं प्रेमवश लोग इमि, राम जहाँ जहँ जाहिं ॥

गाँव गाँव अस होहि अनन्दा । देखि भानुकुल कैरव चन्दा ॥
जे कछु समाचार सुनि पावहिं । ते नृप रानिहिं दोष लगावहिं ॥
कहहिं एक अति भल नरनाहू । दीन्ह हमहिं जिन लोचन लाहू ॥
कहहिं परस्पर लोग लुगाई । बातें सरल सनेह सुहाई ॥
ते पितु मातु धन्य जिन जाये । धन्य सो नगर जहा ते आये ॥
धन्य सो शैल देश बन गाऊं । जहँ जहँ जाहिं धन्य सो ठाऊं ॥
सुख पायो विरञ्चि रचि तेही । ये जेहिके सब भाँति सनेही ॥
राम लषण सिय कथा सुहाई । रही सकल मग कानन छाई ॥

दो०—इहि विधि रघुकुल कमल रवि, मग लोगन सुख देत ।
जाहिं चले देखत विपिन, सिय सौमित्रि समेत ॥

आगे राम लषण पुनि पाछे। तापस वेष विराजत आछे॥
उभय मध्य सिय शोभति कैसी। ब्रह्म जीव विच माया जैसी॥
बहुरि कहौं छवि जस मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहौं जिय जोही। जनु बुध विधु विच रोहिणी सोही॥
प्रभुपद देख बीच विच सीता। धरहिं चरण मग चलत सभीता॥
सीय रामपद अङ्क बराये। लषण चलहिं मगु दाहिन बाँये॥
राम लषण सिय प्रीति सुहाई। वचन अगोचर किमि कहि जाई॥
खग मृग मगन देखि छवि होहीं। लिये चोरि चित राम बटोही॥

दो०—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सीय सहित दोउ भाइ।
भव मग अगम अनन्द ते, विनु श्रम रहे सिराइ॥

भरत की भ्रातृभक्ति।

दो०—राम शपथ सुनि मुनि जनक, सकुचे सभा समेत।
सकल विलोकहिं भरत मुख, बने न उत्तर देत॥

सभा सकुचवश भरत निहारी। रामबन्धु धरि धीरज भारी॥
कुसमय देख सनेह सभारा। बढ़त विन्ध्य जिमि घटज निबारा॥
शोक कनक लोचन मति क्षोनी। हरी विमल गुणगण जग जोनी॥
भरत विवेक वराह विशाला। अनायास उधरे तेहि काला॥
करि प्रणाम सब कह करजोरी। राम राउ गुरु साधु निहोरी॥
क्षमब आजु अति अनुचित मोरा। कहहुँ वचन मृदुवचन कठोरा॥
हिय सुमिरी शारदा सुहाई। मानसते मुख पंकज आई॥
विमल विवेक धर्म्मनय साली। भरत भारती मंजु मराली॥

दो०—निरखि विवेक विलोचनहिं, शिथिल सनेह समाज।
करि प्रणाम बोले भरत, सुमिरि सीय रघुराज॥

प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी। पूज्य परमहित अन्तर्यामी॥
सखा सुसाहिब शील निधाना। प्रणत पाल सर्वज्ञ सुजाना॥

समरथ शरणागत हितकारी। गुण ग्राहक अवगुण अघहारी॥
स्वामि गुसाइहिं सदृश गुसाईं। मोहि समान मैं स्वामि दोहाई॥
प्रभु पितु वचन मोर वश पेली। आयउँ इहाँ समाज सकेली॥
जगभल पोच ऊँच अरु नीचू। अमी अमर पद माहुर मीचू॥
राम रजाइ मेटि मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं॥
सो मैं सब विधि कीन्ह ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥

दोहा०—कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषण भे भूषण सरिस, सुयश चारु चहुँ ओर॥

राउर रीति सुबाणि बड़ाई। जगत विदित निगमागम गाई॥
क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निशीथ निरीश निशंकी॥
तेउ सुनि शरण सामुहे आये। सुकृत पूनाम किये अपनाये॥
देखि दोष कबहु न उर आने। सुनि गुण साधु समाज बखाने॥
को साहेब सेवकहि नेवाजी। आपु समान साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिय सपने। सेवक सकुच शोच उर अपने॥
सो गुसाईं नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहौं पूण रोपी॥
पशु नाचत शुक पाठ पूवीना। गुणगति नट पाठक आधीना॥

दोहा०—सो सुधारि सन्मानि जन, किये साधु शिर मोर।
को कृपालु बिनु पालिहैं, विरदावलि बर जोर॥

शोक सनेह कि बाल स्वभाये। आयसु लाइ रजायसु पाये॥
तबहुँ कृपालु हेरि निज ओरा। सबहिं भाति भल मानेहुँ मोरा॥
देखेउ पाँइ सुमंगल मूला। जानेउ स्वामि सहज अनुकूला॥
बड़े समाज विलोकेउ भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू॥
कृपा अनुग्रह अंगु अघाई। कीन्ह कृपानिधि सब अधिकाई॥
राखा मोर दुलार गुसाईं। अपने शील स्वभाव भलाई॥
नाथ निपट मैं कीन्ह ढिठाई। स्वामि समाज सकोच विहाई॥
अविनय विनय यथारुचि बानी। क्षमिय देव अति आरति जानी॥

दोहा—सुहृद सुजान सुसाहिबहिं, बहुत कहब बडि खोरि।
श्रायसु देइय देव अब, सबइ सुधारिय मोरि॥
प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सींव सुहाई॥
सो करि कहउ हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की॥
सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि विहाई॥
आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसाद जन पावइ देवा॥
अस कहि प्रेम-विवश भय भारी। पुलक शरीर विलोचन वारी॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समय सनेह न सो कहि जाई॥
कृपासिन्धु सनमानि सुवानी। बैठाये समीप गहि पानी॥
भरत विनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ॥
छं०—रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी।
मनमहँ सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी॥
भरतहि प्रसंसत विबुध बरषत सुमन मानस मलिन से।
तुलसी विकल सब लोग सुनि सकुचे निशागम नलिन से॥
सो०—देखि दुखारी दीन, दुहुँ समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन, मुये मारि मंगल चहत॥

वर्षा और शरद वर्णन

दोहा—लछिमन देखहु मोर गण, नाचत वारिद पेखि।
गृही विरति रत हर्ष जस, विष्णु भक्त कहँ देखि॥
घन मंडल नभ गर्जत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा॥
दामिनि दमकि रही घन माहीं। खल कै प्रीति यथा थिर नाहीं॥
बरसहिं जलद भूमि नियराये। यथा नवहिं बुध बिद्या पाये॥
बुंद अघात सहैं गिरि कैसे। खल के वचन संत सह जैसे॥
क्षुद्र नदी भरि चली इतराई। जस थोरेहि धन खल बौराई॥
भूमि परत भा ढाबर पानी। जिमि जीवहि माया लपटानी॥
सिमिट सिमिट जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुण सज्जन पहँ आवा॥

सरिता जल जलनिधि महँ जाई । होहिं अचल जिमि जन हरि पाई ॥

दोहा–हरित भूमि तृण संकुलित, समुझ परै नहिं पथ ।
जिमि पाखण्ड विवाद ते, गुप्त होहिं सद्ग्रन्थ ॥

दादुर धुनि चहुँ दिशा सोहाई । वेद पढ़े जनु बटु समुदाई ॥
नव पल्लव भये विटप अनेका । साधक मन जस मिले विवेका ॥
अर्क जवास पात विनु भयऊ । जस सुराज खल उद्यम गयऊ ॥
खोजत कतहुँ मिलै नहिं धूरी । करै क्रोध जिमि धर्महिं दूरी ॥
ससि सम्पन्न सोह महि कैसी । उपकारी कै सम्पति जैसी ॥
निशि तम घन खद्योत विराजा । जनु दम्भिन कर मिला समाजा ॥
महावृष्टि चलि फूटि कियारी । जिमि स्वतन्त्र होइ बिगरहिं नारी ॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना । जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ॥
देखियत चक्रवाक खग नाहीं । कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं ॥
ऊसर बरसै तृण नहिं जामा । जिमि हरिजन उर उपज न कामा ॥
विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा । प्रजा बाढ जिमि पाइ सुराजा ॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना । जिमि इन्द्रिय गण उपजे ज्ञाना ॥

दोहा–कबहुँ प्रबल चल मारुत, जहँ तहँ मेघ विलाहिं ।
जिमि कपूत कुल ऊपजे, सम्पति धर्म्म नशाहिं ॥
कबहु दिवस महँ निबिड तम, कबहुँक प्रगट पतंग ।
उपजै विनसइ ज्ञान जिमि, पाय कुसंग सुसंग ॥

वर्षा विगत सरद ऋतु आई । लछिमन देखहु परम सुहाई ॥
फूले कास सकल महि छाई । जनु वर्षा कृत प्रगट बुढाई ॥
उदित अगस्त पथ जल शोषा । जिमि लोभहिं शोषे सन्तोषा ॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा । संत हृदय जस गत मदमोहा ॥
रस रस सूख सरित सर पानी । ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी ॥
जानि शरद ऋतु खंजन आये । पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये ॥
पंक न रेनु सोह अस धरनी । नीति निपुण नृप की जस करनी ॥

जल संकोच विकल भये मीना। अबुध कुटुम्बी जनु धनहीना॥
बिनु धन निर्मल सोह अकाशा। हरिजन इव परिहरि सब आशा॥
कहुँ २ वृष्टि शारदी थोरी। कोउ एक पाव भक्ति जिमि मोरी॥
दोहा—चले हर्ष तजि नगर नृप, तापस वणिक भिखारि।
जिमि हरि भक्ति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि॥
सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। जिमि हरि शरण न एको बाधा॥
फूले कमल सोह सर कैसे। निर्गुण ब्रह्म सगुण भये जैसे॥
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खगरव नाना रूपा॥
चक्रवाक मन दुख निशि पेखी। जिमि दुर्जन परसम्पति देखी॥
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहहिं न शंकर द्रोही॥
शरदातप निशि शशि अपहरई। संत दरश जिमि पातक टरई॥
देखि इन्दु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥
मशक दंश बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज मोह किये कुलनासा॥
दोहा—भूमि जीव सकुल रहे, गये शरद ऋतु पाय।
सद्गुरु मीले जाहि जिमि, संशय भ्रम समुदाय॥

संत असंत लक्षण।

संत असन्त भेद बिलगाई। प्रणतपाल मोहिं कहहु बुझाई॥
सन्तन के लक्षण सुनु भ्राता। अगणित श्रुति पुराण विख्याता॥
सन्त असन्तन के अस करनी। जिमि कुठार चंदन आचरणी॥
काटै परशु मलय सुनु भाई। निज गुण देय सुगंध बसाई॥
दोहा—ताते सुर शीशन्ह चढत, जग वल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परशु वदन यह दंड॥
विषय अलम्पट शील गुण कारि। पर दुख दुख सुख सुख देखेपर॥
सम अभूत रिपु विमद विरागी। लोभामर्ष हर्ष भय त्यागी॥
कोमल चित दीनन पर दाया। मन वच क्रम मम भक्ति अमाया।

सबहिं मानप्रद आपु अमानी। भरत प्राण सम मम ते प्रानी॥
विगत काम मम नाम परायण। शांति विरति विनती मुदितायन॥
शीतलता सरलता मइत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयित्री॥
ये सब लक्षण बसहिं जासु उर। जानहु तात संत सतत फुर॥
समदमनियमनीतिनहिंडालहिं। परुष वचन कबहु नहिं बोलहिं॥

दोहा—निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्राण प्रिय, गुण मंदिर सुख पुंज॥

सुनहु असतन केर सुभाऊ। भूलेहु संगति करिय न काऊ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहिं घालै हरहाई॥
खलन्ह हृदय अति ताप विशेषी। जरहिं सदा पर सम्पति देखी॥
कहँ जहुँ निन्दा सुनहिं पराई। हर्षहिं मनहु परी निधि पाई॥
काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बैर अकारण सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥
झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना॥
बोलहिं वचन मधुर जिमि मोरा। खाहिं महा अहि हृदय कठोरा॥

दोहा—पर द्रोही पर दार रत, परधन पर अपवाद।
ते नर पाँवर पाप मय, देह धरे मनुयाद॥

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। शिश्नोदर पर यमपुर त्रासन॥
काहू कै जो सुनहिं बड़ाई। श्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
जब काहू कै देखहिं विपती। सुखी भये मानहुँ जग नृपती॥
स्वारथ रत परिवार विरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥
मातु पिता गुरु विप्र न मानहिं। आपु गये अरु घालहिं आनहिं॥
करहिं मोह बश द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा॥
अवगुण सिंधु मंद अति-कामी। वेद विदूषक परधन स्वामी॥
विप्र द्रोह सुर विमुख विशेषा। दंभ कपट जिय धरे सुवेषा॥

दोहा--ऐसे अधम मनुज खल, कृतयुग त्रेता नाहिं ।
द्वापर कछुक वृन्द बहु, होइहैं कलियुग माहिं ॥
परहित सरिस धर्म नहिं भाई । परपीडा सम नहिं अधमाई ॥
निर्णय सकल पुराण वेद कर । कहेउँ तात जानहिं कोविद नर ॥
नर शरीर धरि जे पर पीरा । करहिं ते सहहिं महा भव भीरा ॥
करहिं मोह वश नर अघ नाना । स्वारथ वश परलोक नसाना ॥
काल रूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता । शुभ अरु अशुभ कर्म फल दाता ॥
अस विचारि जे परम सयाने । भजहिं मोहिं संसृति दुख जाने ॥
त्यागहिं कर्म शुभाशुभ दायक । भजहिं मोहिं सुर नर मुनि नायक ॥
संत असंतन के गुण भाखे । ते न परहिं भव जिन्ह लख राखे ॥

गोस्वामी श्री तुलसीदास कृत ग्रन्थावली ।

'कवितावली रामायण' से

अवधेश के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे ।
अवलोकिहौं सोच-विमोचन को, ठगि सी रही जे न ठगे धिक से ॥
तुलसी मन रञ्जन रञ्जित अञ्जन, नैन सुखंजन जातक से ।
सजनी ससि में सम सील उभै, नव नील सरोरुह से विकसे ॥
पग नूपुर औ पहुँची कर कञ्जनि, मञ्जु बनी मणिमाल हिये ।
नव नील कलेवर पीत झँगा, झलकै पुलकै नृप गोद लिये ॥
अरविन्द सो आनन रूप मरन्द, अनन्दित लोचन भृङ्ग पिये ।
मन में न बस्यो अस बालक जो, तुलसी जग में फल कौन जिये ॥
तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन, कञ्ज की मंजुलताई हरैं ।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छवि भूरि अनंग की दूर धरैं ॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल विनोद करैं ।
अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में विहरैं ॥

कबहूँ शशि मागत आरि करे, कबहू प्रतिबिम्ब निहारि डरैं ।
कबहू करताल बजाइ के नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं ॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिकै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं ।
अवधेश के बालक चारि दशा, तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं ॥
वर दन्त की पगति कुद कली, अधराधर पल्लव खोलन की ॥
चपला चमकै छन बीच जुगे, छवि मोतिन माल अमोलन की ।
घुघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुडल लोल कपोलन की ।
नेवछावर प्राण करैं तुलसी, बलि जाऊँ लला इन बोलन की ॥
पदकञ्जनि मञ्जु बनी पनहीं, धनुहीं सर पकज पाणि लिये ।
लरिका सग खेलत डोलत हैं, सरयूतट चौहट हाट हिये ॥
तुलसी अस बालक सो नहिं नेह, कहा जप योग समाधि किये ।
नर ते खर शूकर श्वान समान, कहो जग में फल कौन जिये ॥

'विनय पत्रिका' से ।

ऐसे राम दीन हितकारी ।

अति कोमल करुणा निधान बिनु कारन पर उपकारी ॥
साधन हीन दीन निज अघबस शिला भई मुनि नारी ।
गृह ते गवनि परसि पद पावन घोर साप ते तारी ॥
हिंसारत निषाद तामस बपु पशु समान बन चारी ।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेम बस नहिं कुल जाति विचारी ॥
यद्यपि द्रोह कियो सुरपति सुत कहि न जाइ अति भारी ।
सकल लोक अवलोकि सोक हत सरन गये भय टारी ॥
विहँग योनि आमिष अहार पर जीव कौन व्रतधारी ।
जनक समान क्रिया ताकी निज कर सब भांति सवारी ॥
अधम जाति सबरी योषित जड लोक वेद ते न्यारी ।
जानि प्रीति दै दरस कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी ॥

परसुख सम्पति देखि सुख, जरहिं जे जड़ विनु आगि ।
तुलसी तिनके भागते, चले भलाई भागि ॥ ६ ॥
कौरव पाण्डव जानिये, क्रोध-क्षमा के सीम ।
पाँचहि मारि न सौ सके, सवो सँहारे भीम ॥ ७ ॥
रोष न रसना खोलिये, वरु खोलिय तरवारि ।
सुनत मधुर परिणाम हित, बोलिय वचन विचारि ॥ ८ ॥

तुलसी सतसई से ।

तुलसी सन्तन ते सुने, सन्तन इहैं विचार ।
तन धन चञ्चल अचल जग, युग युग परे उपकार ॥ १ ॥
उरग तुरंग नारी नृपति, नर नीचा हथियार ।
तुलसी परखत रहव नित, इनहि न पलटत वार ॥ २ ॥
नीच निचाई नहिं तजै, जो पावत सतसङ्ग ।
तुलसी चन्दन विटप वसि, विन विष भय न भुजङ्ग ॥ ३ ॥
दुरजन दरपण सम सदा, करि देखो हिय दौर ।
सन्मुख की गति और है, विमुख भये कुछ और ॥ ४ ॥
मित्रक अवगुण मित्र को, पर पहँ भाषत नाहिं ।
कूप छाह जिमि आपनी, राखत आपहि माहिं ॥ ५ ॥
तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती साधु सुजान ।
जो विचारि व्यवहरत जग, खरच लाभ अनुमान ॥ ६ ॥
तुलसी खल वाणी विमल, सुनि समुझव हिय हेरि ।
राम राज बाधक भई, मन्द मन्थरा चेरि ॥ ७ ॥
तुलसी साथी विपति के, विद्या विनय विवेक ।
साहस सुकृत सत्य व्रत, राम भरोसो एक ॥ ८ ॥

श्री दादूदयाल के भजन और साखियाँ।

मन रे राम बिना तन छीजइ।

जब यह जरि मिलजाइ माटी में तब कहु कइसहि कीजइ।
पारस परस कँचन कर लीजइ सहज सुरत सुखदाई॥
माया बेलि विषै फल लागे तापर भूलु न भाई॥
जब लगि प्राण पिण्ड है नीका तब लगि तू जिनि भूलइ।
यह ससार सेमर के सुख ज्यौं तापर तू जनि फूलइ॥
श्रोरउ यही जानि जग जीवन समभ देखि सच पावइ।
अंग अनेक आन मति भूलइ दादू जिनि डहँकावइ॥ १॥
पेसा राम हमारे आवै। वार पार कोइ अत न पावै॥
हलका भारी कहा न जाइ। मोल भाव नहिं रह्यो समाइ॥
कीमति लेखा नहिं परिमाणा। सब पचि हारे साधु सुजाणा॥
आगौ पीछौ परिमित नाँहीं। केते पारिख आवहिं जाहीं॥
आदि अत मधि लखे न कोइ। दादू देखे अचिरज होइ॥

दोहे।

बहु रूपी मन तब लगे, जब लग माया रग।
जब मन लाग्या राम सू, तब दादू के अग॥ १॥
ध्यान धरे क्या होत है, जो मन मेल न जाय।
ध्यान धारि बग मीन जिम, पशू विचारे खाय॥ २॥
जे पहले सदगुरु कह्या, नैनहु देख्या आइ।
अरस परस उस एक सूं, दादू रहा समाइ॥ ३॥
दादू दीया है भला, दिया करो सब कोय।
घर में धरा न पाइये, जो कर दिया न हाय॥ ४॥
सुख का साथी जगत सब, दुख का नाहीं कोइ।
दुख का साथी साइयाँ, दादू सतगुरु होइ॥ ५॥

परसुख सम्पति देखि सुनि, जरहिं जे जड़ बिनु आगि।
तुलसी तिनके भागते, चले भलाई भागि॥ ६॥
कौरव पाण्डव जानिये, क्रोध क्षमा के सीम।
पाँचहिं मारि न सौ सके, सवो सँहारे भीम॥ ७॥
रोष न रसना खोलिये, वरु खोलिय तरवारि।
सुनत मधुर परिणाम हित, बोलिय वचन विचारि॥ ८॥

तुलसी सतसई से

तुलसी सन्तन ते सुनै, सन्तन इहै विचार।
तन धन चञ्चल अचल जग, युग युग पर उपकार॥ १॥
उरग तुरग नारी नृपति, नर नीचा हथियार।
तुलसी परखत रहवी नित, इनहिं न पलटत वार॥ २॥
नीच निचाई नहिं तजै, जो पावत सतसङ्ग।
तुलसी चन्दन विटप वसि, विन विष भय न भुजङ्ग॥ ३॥
दुरजन दरपण सम सदा, करि देखो हिय दौर।
सन्मुख की गति और है, विमुख भये कुछ और॥ ४॥
मित्रक अवगुण मित्र को, पर पहँ भाषत नाहिं।
कूप छाँह जिमि आपनी, राखत आपहि माहिं॥ ५॥
तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती साधु सुजान।
जो विचारि व्यवहरत जग, खरच लाभ अनुमान॥ ६॥
तुलसी खल वाणी विमल, सुनि समुझव हिय हेरि।
राम राज बाधक भई, मन्द मन्थरा चेरि॥ ७॥
तुलसी साथी विपति के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्य व्रत, राम भरोसो एक॥ ८॥

जा दिन तें वह नन्द को छोहरो या बन धेनु चराइ गयो है।
मोंठि ही ताननि गोधन गावत बेन बजाइ रिझाइ गयो है॥
वा दिन सों कुछ टोना सों के रसखानि हिये में समाइ गयो है।
काउ न काहू की कानि करै सिगरो ब्रजबीर बिकाइ गयो है॥७॥
मकराकृत कुण्डल गुञ्ज की माल वे लाल लसैं पग पाँवरियाँ।
बछरानि चरावन के मिस भावतो दै गयो भावती भावरियाँ॥
रसखानि विलोकत ही सिगरी भईं बावरियाँ ब्रज डावरियाँ।
सजनि इहिं गोकुल मैं विष सों बगरायो है नन्द के साँवरियाँ॥८॥
प्रान वही जु रहें रिझि वापर रूप वही जिहिं वाहि रिझायो।
सीस वही जिन वे परसे पद अङ्क वही जिन वा परसायो॥
दूध वही जु दुहायो री वाहि दही सु सही जो वही ढरकायो।
और कहा लौं कहौं रसखानि री भाव वही जु वही मन भायो॥९॥
कञ्चन मन्दिर ऊँचे बनाइ कै मानिक लाइ सदा झलकैयत।
प्रात ही ते सगरी नगरी गजमोतिन ही की तुलानि तुलैयत॥
यद्यपि दीन प्रजान प्रजा निन की प्रभुता मघवा ललचैयत।
ऐसे भये तो कहा रसखानि जो साँवरे ग्वाल सो नेह न लैयत॥१०॥
द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम-गेहिनी कैसी तरी प्रह्लाद को कैसे हरयो दुख भारो॥
काहे को सोंच करै रसखानि कहा करि हैं रविनन्द विचारो।
ताखन जाखन राखिये माखन चाखन हारो सो राखनहारो॥११॥
देस बिदेस के देखे नरेसन रीझि की कोउ न बूझ करैगो।
तातों तिन्हें तजि जान गिरयो गुन सो गुन औगुन गाँठि परैगो॥
बाँसुरीवारो बडो रिझवार है स्याम जो नैकु सुढार ढरैगो।
लाडला छैल वही तौ अहीर को पीर हमारे हिये की हरैगो॥१२॥

सुजान रसखानि के सवैये।

मानुस हौं तो वही रसखानि बसौं व्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बसु मेरो चरों नित नन्द की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो भयो व्रज छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं उन कालिन्दी कूल कदम्ब के डारन॥१॥
या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठौं सिद्धि नवौ निधि को सुख नन्द की गाइ चराय बिसारौं॥
कोटि करौं कलधौत के धाम करील के कुञ्जन ऊपर वारौं।
रसखानि कहै इन आँखिन सो व्रज के बन बाग तडाग निहारौं॥२॥
गावैं गुनी गनिका गन्धर्व और सारद सेस सबै गुन गावत।
नाम अनन्त गनत गनेस ज्यौं ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरन्तर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोकरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत॥३॥
सेस गनेस महेस दिनेस सुरेस हू जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥४॥
बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सो सानी।
हाथ वही उन गात सरैं, अरु पाइ वही जो वही अनुजानी॥
जान वही उन प्रान के संग औ मान वही जो करै मनमानी।
त्यौं रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी॥५॥
दोउ कानन कुण्डल मोरपखा सिर सोहै दुकूल नयो चटको।
मनि हार गरे सुकुमार धरे नट भेस अरे पिय को टटको॥
सुभ काछनी बेजनी पैजनी पायन आनन मैं न लगै भटको।
यह सुंदर को रसखान अली जु गलीन मैं आइ अबै अँटको॥६॥

गई भूमि फिर मिले, बेलि फिर जमैं जरेते,
फल फूलन तैं फले, फूल फूलंत झरे ते,
केशव विद्या निकट, विकट विसरी फिर आवे,
बहुरि होय धन धर्म, गई सपति फिर पावे;
होई जो शील सुशील मति, जगत हेतु इम गाइये,
प्रान गयो फिर मिलत पे, पत न गई फिर पाइये ॥ ६ ॥

—o—

महात्मा सुन्दरदास कृत।

तृष्णा का अंग।

इन्दव छंद।

नैननि की पलही पल में क्षण आध घरी घटिका जु गई है।
जाम गयौ जुग जाम गयौ पुनि साझ गइ तव राति भई है॥
आज गई अरु काल्हि गई परसों तरसौं कछु और ठई है।
सुँदर ऐसे हिं आयु गई तृसना दिन ही दिन होत नई है॥१॥

दुमिला छंद

कनहीं कन कौ विललात फिरे सठ जाचत है जन ही जन कौं।
तनही तन को अति सोच करे नर खात रहै अन ही अन कौं॥
मनही मन की तृष्णा न मिटी पुनि धावत है धन ही धन कौं।
छिन ही छिन सुन्दर आयु घटी कबहू न गयौ बन ही बन कौं॥२॥

इंदव छंद।

लाख करोरि अरब्ब अरब्बनि नीलि पद्म्म तहा लग घाटी।
जोरिहि जोरि भंडार भरे सब ओर रही सु जिमीं तर दाटी॥
तौहु न तोहि सताप भयो सठ सुंदर ते तृष्णा नहिं काटी।
सूझत नाहिं न काल सदा सिर मारि कैं थाप मिलाई है माटी॥३॥

भूप नचावत एकहि राजहि भूप नचाइ कैं विश्व बिगोई।
भूप नचावत इन्द्र सुरासुर और अनेक जहा लग जोई॥
भूप नचावत है अध ऊरध तीनहु लोक गनै कहा कोई।
सुंदर जाइ तहा दुख ही दुख ज्ञान विना न कहू सुख होई॥४॥

हे तृसना कहि कै तुहि थाक्यो
तैं कउ कान भरी नहि एकहु बोलत बोलत पेटहि पाक्यो।
हौं कोउ बात बनाइ कहू जब तैं सब पीसत ही सब फाक्यो॥
केतक द्यौस भये परमोधत तैं अब आगहिं कौं रथ हाँक्यो।
सुंदर सीष गई सब ही चलि तृसना कहि कैं तुहि थाक्यो॥५॥

बिहारी लाल।

दोहे।

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तनु की झाई परे, श्याम हरित द्युति होय॥१॥
अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठ पट ज्योति।
हरित बाँसकी बासुरी, इन्द्र धनुष रँग होति॥२॥
जो चाहै चटकन घटै, मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये, नेह चीकने चित्त॥३॥
चटक न छाडत घटत हू, सज्जन नेह गभीर।
फीको परै न बरु घटै, रग्यौ चोल रग चीर॥४॥
नीच हिये हुलसे रहें, गहें गेंद के पोत।
ज्यों ज्यों माथे मारिये, त्यों त्यों ऊँचे होत॥५॥
कोटि यतन कोऊ करै, परै, न प्रकृतिहिं बीच।
नलबल जल ऊँचो चढै, अन्त नीच को नीच॥६॥

कैसे छोटे नरन तें सरत बडनि के काम।
मढो दमामो जात है, कहिं चूहे के चाम ॥ ७ ॥
मीत न नीति गलीत ह्वै, जो धरिये धन जोरि।
खाये खरचे जो बचै तो जोरियै करोरि ॥ ८ ॥
घर घर डोलत दीन ह्वै, जन जन याचत जाय।
दिये लोभ चसमा चखनि, लघु पुनि बडो लखाय ॥ ९ ॥
बसै बुराई जासु मन, ताही के सन्मान।
भलो भलो कहि छाँडिये, खोटे ग्रह जपदान ॥ १० ॥
बुरो बुराई जो तजै, तौ मन खरो सकात।
ज्यों निकलक मयक लखि, गनैं लोग उतपात ॥ ११ ॥
बढत बढत संपति सलिल, मन सरोज बढि जाइ।
घटत घटत पुनि ना घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ॥ १२ ॥
सगति सुमति न पावही, परे कुमति के धध।
राखो मेलि कपूर में, हींग न होय सुगध ॥ १३ ॥
नर की अरु नल नीर की, एकै गति करि जोय।
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊँचो होय ॥ १४ ॥
जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सो बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब में, अपत कटीली डार ॥ १५ ॥
इहि आशा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
हुइहैं बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल ॥ १६ ॥
पट पाखें भख काँकरे, सदा परेई सग।
सुखी परेवा जगत में, एकै तुही विहग ॥ १७ ॥
भरत प्यास पिंजरा परयो, सुआ समय के फेर।
आदर दै दै बोलियतु, बायस बलि की बेर ॥ १८ ॥
कर ले सूँघि सराहि के, रहै सबे गहि मौन।
गधी गध गुलाब को, गँवई गाहक कौन ॥ १९ ॥

करि फुलेल कों आचमन, मीठो कहत सराहि।
चुपकरि रे गधी चतुर, अतर दिखावत काहि ॥ २० ॥

भूषण कवितावली।

श्रीछत्रसाल विषयक कवित्त।

निकसत म्यान ते मयूखैं प्रलय भानु कैसी,
फारैं तम तोम से गयन्दन के जाल को।
लागत लपटि कंठ वैरनि के नागिनी सी,
रुद्रहि रिझावै दै दै मुंडन के माल को॥
लाल छिति पाल छत्रसाल महा वाहुबली,
कहा लौं वखान करौं तेरी करवाल को।
प्रति भट कटक कटील केते काटि काटि,
कालिका सी किलकी कलेऊ देत काल को ॥ १ ॥
भुज भुजगेस की वै संगिनी भुजगिनी सी,
खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के।
वखतर पाखरिन वीच धसि जाति मीन,
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के॥
रैया राय चम्पति को छत्रसाल महाराज,
भूषन सकत को वखानि तो वलन के।
पच्छी पर छीने ऐसे परे पर छीने वीर,
तेरी वरछी ने वर छीने हैं खलन के ॥ २ ॥
रैया राय चम्पति को चढो छत्रसाल सिंह,
भूषन भनत समसेर जोम जमकै।
भादौं की घटा सी उठी गरदैं गगन घेरैं,
सेलैं समसेरैं फेरैं दामिनि सी दमकै॥

खान उमरावन के आन राजा रावन के,
सुनि सुनि उर लागे घन कैसी घमके।
बेहर बगारन की अरि के अगारन की,
नाँघती पगारन नगारन की धमकै ॥ ३ ॥
हे वर हरट्ट साजि, गैवर गरट्ट सम,
पैदर के ठट्ट फौज जुरी, तुरकाने की।
भूषन भनत राय चम्पति को छत्रसाल,
रोप्यो रनख्याल ह्वै कै ढाल हिन्दुवाने की ॥
कै यक हजार एक बार बैरी मार डारे,
रजक दगनि माना अगिनि रिसाने की।
सैद अफगान सेन सगर सुतन लागी,
कपिल सराप लौ तराप तोपखाने की ॥ ४ ॥
चाक चक्र चमकै अचाक चक चहुँ ओर,
चाकसी फिरत धाक चम्पति के लाल की।
भूपन भनत पातसाही मम जेर कीन्हीं,
काहू उमराव ना करेरी करवाल की ॥
सुनि सुनि रीति विरदैत के बडप्पन की,
थप्पन उथप्पन की बानी छत्रसाल की।
जग जीति लेवा पे वै ह्वैकै दाम देवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा महिपाल की ॥ ५ ॥

श्रीशिवाजी विषयक कवित्त ।

इन्द्र जिमि जंभ पर बाडव सुअंभ पर,
रावन सु दंभ पर रघुकुल राज हैं,
पौन बारिवाह पर शंभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज हैं,

दावा द्रुमदुंड पर चित्ता मृग भुंड पर,
भूषन वितुंड पर जैसे मृगराज हैं;
तेज तम अंश पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों विपच्छ वंश पर शेर शिवराज हैं ॥ १ ॥
गरुड को दावा जैसे नाग के समूह पर,
दावा नाग यूथ पर सिंह-शिरताज को,
दावा पुरहूत को पहारन के पूर पर,
दावा सब पंछिन के गन पर बाज को,
भूषन अखंड नवखंड मही मंडल मैं,
तम पर दावा रवि किरन समाज को;
पूरब पछांह देस उत्तरतें दच्छिन लों,
जहाँ पातशाही तहाँ दावा शिवराज को ॥ २ ॥
प्रेतनी पिशाच अरु निशाचर निशाचरी यौं,
मिलि मिलि आपस में गावत बधाई हैं;
भैंरौं भूत भूरि भिरि भ्रमत भयकर से,
जूथ जूथ जोगिनि जमान जुरि आई हैं,
किलकि किलकि काली करत कुलाहल सो,
डौंरू गहि वामकर शंकर बजाई हैं;
शिवा पूछे शिवसों समाज कहि काज चल्यो,
आज शिवराज भौंह काहू पै चढ़ाई हैं ॥ ३ ॥
छूटत कमान बान गोली औ गिलोलन के,
नाहीं ठहरात मुरचानहू की ओट मैं,
कौनो शिवराज वीर ताहि घेर हल्लाहद्द,
बाध्यो परहल्ला प्रतिपच्छी भट जोट मैं;
भूषन भनत तेरी हिम्मत सराहौं हद,
नाहीं को चहान बीच तेरे सम चोट मैं,

ताव दे दे मूछन कगूरनपै पाव दे दे,
शत्रु शिर घाव दे दे कूदे परे कोट में ॥ ४ ॥
दुग्ग पर दुग्ग जीते शिरजा शिवाजी गाजी,
फुड रिपु मुडन के उग्र हार फरके,
भूषन भनत बाजे जीत के नगारे न्यारे,
सारे करनाटी भूप सिंहललों सरके,
नारे लगे शोणित के बहन पनारे लगे,
भारे लगे धमके सतारे गढ धरके,
बीजापुर बीरन के गोलकुडा धीरन के,
दिल्ही उर मीरन के दाडिमसे दरके ॥ ५ ॥
काहु न सुधारी काहु बदरतें पाव धारी,
पडव पसारी रप्रवारी रजवट की,
बढी भुजदड चड चचल अकाश खेली,
लागी पर लाग लेन काहुपें न अटकी।
खेल दिल्ही बीच और गोलकुडा बीजापुर,
खेलत निहारी मरजाद सिंधु तट की,
भूषन भनत महाराज शिवराज वीर,
तेरी तलवार कैधो नाची नार नट की ॥ ६ ॥
इन्द्र करि यत्न नित हिरत गजेंद्र हू को,
हेरत उपेंद्र कामधेनु प्रिय निशा कों,
भूषन भनत विधि हेरे राजहंस निज,
हेरत चकोर चहु ओर रजनीश कों,
सिंह शिवराज कृत सघर पराक्रम कों,
हेरे भो अचभो सुर कोटी त्रियतीस कों,
हेरे ना लहत तुव जश में हिराने अब,
हेरत गिरीश गौरी गिरिजा गिरीश कों ॥ ७ ॥

माते मदवारे जाके द्विरद निहारे भारे,
चचल तुरङ्ग सैन शूर रनजीत हैं
भूखन मनत वान छूटे नाग पुज मम,
देखत डराने रिपु भागे भयभीत है,
क्रूर कुरापाती अरु सज्जन तमाम मिलि,
गहत विवेक नेक न्याय धर्म रीत है,
कपट अनीत द्वेश काहू में न रह्यो लेश,
नीकी शिवराज राजे, ऐसी राजनीत हे ॥ ८ ॥

रायगढ़-वर्णन।

(१)

मनिमय महल शिवराज के इमि रायगढ में राजहीं।
लखि यच्छ किन्नर सुर असुर गधर्व हौंसनि साजहीं ॥
उत्तंग मरकत मन्दिरन मधि बहु मृदग जु बाजहीं।
घन समैं मानहु घुमरि करि घन घन पटल गल गाजहीं ॥

(२)

मुकतान की झालरनि मिलि मथि माल छज्जा छाजहीं।
सन्ध्या समैं मानहुँ नगन गन लाल अम्बर राजहीं।
जहँ तहाँ ऊरध्वे उठे हीरा किरन घन समुदाय हैं।
मानो गगन तम्बू तन्यो ताके सपेत तनाय हैं ॥

(३)

भूषन भनत जहँ परसि कै मनि पुहपरागन की प्रभा।
प्रभु पीत पट की प्रगट पावत सिंधु में घन की सभा ॥
सुच नागरनि के राजहीं कहुँ फटिक महलन सग में।
पिकसग कोमल कमल मानहु अमल गग तरग में ॥

(४)

आनन्द सों सुन्दरिन के कहुँ बदन इन्दु उदोत हैं।
नभसरित के प्रफुलित कुमुद मुकुलित कमल कुल होत हैं॥
कहुँ बावरी सर कूप राजत बद्ध मनि सोपान हैं।
जहँ हंस सारस चकवाक विहार करत सनान हैं॥

(५)

कितहूँ विसाल प्रवाल जालन जटित अगन भूमि है।
जहँ ललित बागनि द्रुमलता मिलि रहे झिलमिल झूमि है॥
चम्पा चमेली चारु चन्दन चारिहू दिसि देखिये।
लवली लवग इलानि केरे लाखहों लगि लेखिए॥

(६)

कहुँ केतकी कदली करौंदा कुंद अरु कर वीर हैं।
कहुँ दाख दाडिम सेव कटहल तूत अरु जम्भीर हैं॥
कितहूँ कदम्ब कदम्ब कहुँ हिंताल ताल तमाल हैं।
पीयूष तें मीठे फले कितहू रसाल रसाल हैं॥

(७)

पुन्नाग कहुँ कहुँ नाग केसरि कतहुँ बकुल असोक हैं।
कहुँ ललित अगर गुलाब पाटल पटल बेला थोक हैं॥
कितहू निवारी माधवी सिंगारहार कहूँ लसैं।
जहँ भाति भातिन रँग रँग विहग आनँद सों रसैं॥

(८)

लसत विहँगम बहु लतनिन बहु भाँति बाग महँ।
कोकिल कीर कपोत केलि कलकल करत नहँ॥
मञ्जुल महरि मयूर चतुरा चातक चकोर गन।
पियत मधुर मकरन्द करत झंकार भृङ्ग घन॥

भूषन सुवास फल फूल युत छहु ऋतु वसत वसंत जहँ ।
इमि राजदुग्ग राजत रुचिर सुखदायक सिवराज कहँ ॥



मतिरामकृत 'बूँदी' वर्णन ।

दोहा ।

जगत-विदित बूँदी नगर, सुख सम्पत्ति को धाम ।
कलियुगहू में सत्यजुग, तहाँ करत विश्राम ॥ १ ॥
पढत सुनत मन दै निगम, आगम स्मृत पुरान ।
गीत कवित्त कलान के, जहँ सब लोग सुजान ॥ २ ॥
सरद वारिधर से लसत, अमल धौर हर धौल ।
चित्रति चित्रित सिखर जहँ, इन्द्र धनुष से नील ॥ ३ ॥
महलनि ऊपर जहँ बने, कञ्चन कलस अनूप ।
निज प्रभानि सौं करत हैं, गगन पीत अनुरूप ॥ ४ ॥
जहँ विमान वनितान के, श्रम जल हरत अनूप ।
सौध पातकनि के बसन, होइ विजन अनुरूप ॥ ५ ॥
वीना वेनु निनाद मृग, मोहि अचल करि चन्द ।
सोध सिखर ऊपर जहाँ, दम्पति करत अनन्द ॥ ६ ॥
जहाँ छहौं ऋतु में मधुर, सुनि मृदङ्ग मृदु सोर ।
सग ललित ललनानि के, नृत्य करत गृह मोर ॥ ७ ॥
मरकत लाल प्रवाल मनि, मुकुट हीर अवदान ।
ललित राज पथ में जहाँ, जरकस वसन विकाल ॥ ८ ॥
मण्डल वरषत भूमि के, जलधर सम मातङ्ग ।
बिना परनि के खग जहाँ, सुन्दर तरल तुरङ्ग ॥ ९ ॥
सदा प्रफुल्लित फलित जहँ, द्रुम वेलिन के बाग ।
अलि कोकिल कल धुनि सुनत, लहत थकत अनराग ॥१०॥

कमल कुमुद कुवलयन के, परिमल मधुर पराग।
सुरभि सलिल पूरे जहाँ वापी कूप तडाग॥ ११॥
शुक चकार चातक चुहिल, कोक मत्त कलहंस।
जहँ तरवर सरवरन के, लसत ललित अवतंस॥१२॥
अक्षैवट बालक उदर, ज्यौं संसार समाय।
सकल जगत पानिप रह्यौ, बूँदी में ठहराय॥१३
तामें प्रतिबिम्बित मनौं, सम्पत्ति जुत सुर लोक।
घर घर नर नारी लसैं, दिव्य रूप के ओक॥१४॥

— ✻ —

देव-कवितावली।

गोपियों का सौहाद।

को हमको तुमसे तपसी त्रिन जोग सिखावन आइ है ऊधो।
पै अब एही कहौ उनको पिछली सुधि आवत है कबहू धौं॥
एक भली भई भूप भये जिन्हें भूलि गया दधि माखन दूधौ।
कूबरी सी अति सूधी वधू वर पायो भलो घनश्याम सो सूधो॥१॥
रावरो रूप रह्यो भरि नैननि बैननि के रस सौं श्रुति सानो।
गात मैं देखत गात तुम्हारेई बात तुम्हारिये बान बखानो॥
ऊधो हहा हरि सौं कहिये तुम ही न इहाँ यह तो नहिं मानो।
या तनते बिछुरे तो कहा मनते अनते जु बसो तब जानो॥२॥
मोहन माई भई मथुरापति देव महामद सौं मन मात्यौ।
कोर परे अब कूबरी के हरि या ते कियो हम सौं हित हात्यौ।
गोकुल गाँव के लोग गरीब हैं वासु बराबरी ही का यहाँ त्यो।
बैठि रह्यो सपनेहू सुन्यो कहूँ राजन सा परजान सौं नात्यो॥३॥

पूतना के पय पान करो तन पूत नाते निसराष बगारत।
देव कहा कहीं मातु पिता हिन बंधुन सो हितु नीके निबाहत॥
कारे ही कान्ह निकारे हौ कीलि रहे गुन लीलि पै औगुन थाहत।
पन्नग की मनि कीने तुम्हें तुम पन्नग की किंचुली कियो चाहत॥४॥

कंस रिपु अंस अवतारी यदुवंस कोई
कान्ह सो परमहंस कहे तो कहा सरो।
हम तो निहारे ते निहारे व्रजवासिन में
देव मुनि जाको पचिहारे निसि बासरो॥
भ्रम न हमारे जप संजम न करें कछु
बहि गयो जोग जमुना जल विलासरो।
गोकुल गोसाइनि परम सुखदाइनि
श्रीराधा ठकुराइनि के पायनि को आसरो॥५॥

बाहिर ही बैठो मनि पैठो ब्रज कुंज ऊधौ
बातनि विरूधो जनि सूधो व्रजलोग पर।
देव कौन देखै देखे गोपी के दुसह दसा
विरह बिलाकी रापी प्रेम के प्रयोग पर
कैसे कहि आवत कुटिल हठ बात सठ
बात न सुहात कुबिजा के सुख भोग पर।
संजोग विहारे ते अजोग ही निहारे जोग
काटिक तिहारे हम वारे या वियोग पर॥६॥

गोपियों की प्रेम भक्ति।

न्यारी भई गोपी सो गुपाल की गुपित प्यारी
पुहुमी उज्यारी मैं पदुम परन्यास हीं।
देव देवता सी देखि पूछै हरि देख्यो कहूँ
देख्यो जो न सनकन नारद न व्यास हीं॥

पच्छिम पयोधि के पुलिन आयो इंदु एऊ
कालिंदी पुलिन आई आनन उज्यास ही।
लीला लगी करन जु पूतनादि कीन्ही श्याम
कोई वनी कान्ह काई गोपी अनभ्यास ही॥ १॥
फेरि फेरि टेरि टेरि हेरि हेरि हारी कहूँ
मिल्यो न विहारी विहरैया व्रजजन को।
यमुना पुलिन खुलि खुलिन नयन गुन
गन गाय राय रोय राच्यों मोह मन को॥
वंशी कर लीने वंशीवट के निकट देव
प्रगट्यो हँसत अनुरंजन जो जन को
दौरि दौरि हँसि हँसि रूसि रूसि लियो हरि
हियो भरि भेंट्यौ सब मेट्यो ताप तन को॥ २॥
जानति न वाद विधि वेद मरजाद तुम,
प्रेम के प्रमाद हूँ प्रमानन पनति हौ।
प्रेम को महातम महातम न मानै, पर,
मातम प्रधानै यहि आतम की गति है।
देव अनुकूल आप सरन चरन मूल,
हरिये हिये के सूल सुन्दर सुमति हौ।
ऊपर तिहारे पति रति हम हारे न
निहारे तनु प्रानिन हमारे प्रानपति हौ॥ ३॥
पूतना को वैरी यह पूतना जसोमति को,
छोटे ही छपाचर की छाती चढो छोहरो।
लोटि डारो सकट पछारो वच्छ फारयो वक,
कालिय निकारयो प्रान अघासुर को हरयो।
मुख मैं दिखायो जगु विधि को भुलायो मनु,
खाल्यो मघवा को उर पाल्यो ब्रज गोहरो।

आखिन को तारो है हमारो भयो आँखि ओट,
देत दुख हाँसी को देखावै अब सो हरो ॥ ४ ॥

वृन्द के नीतिमय दोहे ।

मधुर वचन तें जात मिट, उत्तम जन अभिमान ।
तनक सीत जलसों मिटे, जैसे दूध उफान ॥ १ ॥
कछु बसाय नहिं सबलसों, करे निबल सों जोर ।
चलै न अचल उखार तरु, डारत पवन झकोर ॥ २ ॥
पर घर कबहु न जाइये, गये घटत है जोति ।
रवि मडल में जात शशि, छीन कला छवि होति ॥ ३ ॥
निकट अबुध समुझै कहा, बुधजन वचन विलास ।
कबहू भेक न जानही, अमल कमल की बास ॥ ४ ॥
दोषहि सों उमहे गहै, गुण न गहै खल लोक ।
पिये रुधिर पय ना पिये, लगी पयोधर जोंक ॥ ५ ॥
क्यों कीजे ऐसो जतन, जातें काज न होय ।
पर्वत में खोदे कुआ, कैसे निकसे तोय ॥ ६ ॥
धन बाढे मन बढ गयो, नाहि न मन घट होय ।
ज्यों जल सँग बाढै जलज, जल घट घटे न सोय ॥ ७ ॥
सब तें लघु है मागवो, यामें फेर न फार ।
बलि पै जाचत ही भये, बामन तन करतार ॥ ८ ॥
बीर पराक्रम ना करे, तासों डरत न कोय ।
बालक हू के चित्र को, बाघ खिलौना होय ॥ ९ ॥
भली करत लागे विलम्ब, विलम्ब न बुरे विचार ।
भवन बनावत दिन लगै, ढाहत लगै न बार ॥ १० ॥

सुख सज्जन के मिलन को, दुर्जन मिले जनाय।
जाने ऊख मिठास को, जब मुख निंब चबाय ॥ ११ ॥
जाहि मिले सुख होत है, तिहि बिछुरे दुख होय।
सूर उदै फूले कमल, ता बिन सकुचै सोय ॥ १२ ॥
कछु कहि नीच न छेड़िये, भलो न वाको संग।
पत्थर डारे कीच में, उछरि बिगारे अंग ॥ १३ ॥
सज्जन बचावत कष्ट ते, रहे निरंतर साथ।
नैन सहाई ज्यों पलक, देह सहाई हाथ ॥ १४ ॥
बुद्धिवान गंभीर कों, संगत लागै नाहिं।
ज्यों चंदन ढिग अहिरहत विष न होय तिहि माहिं ॥१५॥
बचन पारखी होहु तूं, पहले आप न भाख।
अनपूछे नहिं भाखिये, यही सीख जिय राख ॥ १६ ॥
नैन श्रवण मुख नासिका, सबही के इक ठौर।
कहबौ सुनबौ देखबो, चतुरन को कछु और ॥ १७ ॥
भाव भाव्र की सिद्धि है, भाव भाव में भेव।
जो माने तो देव है, नहीं भीत को लेव ॥ १८ ॥
जैसो गुण दीनो दई, तैसो रूप निबंध।
ये दोऊ कहाँ पाइये, सोनो और सुगंध ॥ १९ ॥
श्रमही सों सब मिलत है, बिन श्रम मिलै न काहि।
सीधी अंगुरि घी जम्यो, क्यों हू निकरै नाहिं ॥ २० ॥
जो जाको गुन जानही, सो तिहिं आदर देत।
कोकिल अंबहि लेत है, काग निंबौरी हेत ॥ २१ ॥
जाही ते कछु पाइये, करिये ताकी आस।
रीते सरवर पै गये, कैसे बुझत पियास ॥ २२ ॥
गुनही तऊ मँगाइये, जो जीवन सुख भौन।
आग जरावत नगर तऊ, आग न आनत कौन ॥ २३ ॥

रस अनरस समझे न कछु, पढ़े प्रेम की गाथ।
बीछू मन्त्र न जानहीं, साँप पिटारे हाथ ॥ २४ ॥
कैसे निबहै निबल जन, कर सबलन सों गैर।
जैसे बस सागर विषे, करत मगर सों बैर ॥ २५ ॥
दीबो अवसर को भलो, जासों सुधरै काम।
खेती सूखे बरसबो, घन को कौने काम ॥ २६ ॥
अपनी पहुँच विचारि कै, करतब करिये दौर।
तेते पाँव पसारिये, जेती लांबी सौर ॥ २७ ॥
विद्या धन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन।
बिना डुलाये ना मिले, ज्यों पखा की पौन ॥ २८ ॥
बुरे लगत सिख के बचन, हिये विचारो आप।
करुवो भेषज बिन पिये, मिटै न तन की ताप ॥ २९ ॥
रहे समीप बडेन के, होत बडो हित मेल।
सबही जानत बढ़त है, वृक्ष बराबर बेल ॥ ३० ॥
फेर न ह्वै है कपट सों, जो कीजै व्यौपार।
जैसे हाँडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार ॥ ३१ ॥
करिये सुख को होत दुख, यह कहौ कौन सयान।
वा सोने को जारिये, जासों टूटै कान ॥ ३२ ॥
नयना देत बताय सब, हिय को हेत अहेत।
जैसे निर्मल आरसी, भली बुरी कहि देत ॥ ३३ ॥
अति परचै ने होत है, अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी, चन्दन देत जराय ॥ ३४ ॥
भले बुरे सब एक सों जौं लौं बोलत नाहिं।
जानि परतु हैं काक पिक, ऋतु बसन्त के माहिं ॥ ३५ ॥
हितहू की कहिय न तिहिं, जो नर होय अबोध।
ज्यों नकटे को आरसी, होत दिखाये क्रोध ॥ ३६ ॥

सबै सहायक सबल के, कोऊ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहिं देत बुझाय ॥ ३७ ॥
रोष मिटे कैसे कहत, रिस उपजावन बात।
ईंधन डारे आग मों, कैसे आग बुझात ॥ ३८ ॥
जो जेहि भावे सो भलौ, गुन को कछु न विचार।
तज गज मुक्ता भीलनी, पहिरति गुंजा हार ॥ ३९ ॥
दुष्ट न छाडे दुष्टता, कैसे हू सुख देत।
धाये हूँ सौ बेर के, काजर होय न सेत ॥ ४० ॥
जाको जैसी उचित तिहिं, करिये सोइ विचारि।
गीदर कैसे ल्याइ है, गज मुक्ता गज मारि ॥ ४१ ॥
जैसे बधन प्रेम कों, तैसो बध न और।
काठहि भेदे कमल को, छेद न निकरै भौंर ॥ ४२ ॥
जे चेतन ते क्यों तजैं, जाको जासो मोह।
चुवक के पीछे लग्यो, फिरत अचेतन लोह ॥ ४३ ॥
जो पावै अति उच्चपद, ताको पतन निदान।
ज्यों तपि तपि मध्याह्न लों अस्त होतु है भान ॥ ४४ ॥
मूरख गुन समझे नहीं, तौ न गुनी में चूक।
कहा भयो दिन को विभौ, देखै जौ न उलूक ॥ ४५ ॥
करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोइ।
रोपै विरवा आक को, आँम कहाँ ते होइ ॥ ४६ ॥
बहुत निबल मिल बल करैं, करैं जु चाहैं सोय।
तिनकन की रसरी करी, करी निबन्धन होय ॥ ४७ ॥
साँच झूँठ निराय करै, नीति निपुण जो होय।
राजहस विन को करे, क्षीर नीर को दोय ॥ ४८ ॥
कारज धीरे होतु है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फलै, केतक सींचो नीर ॥ ४९ ॥

बुरी करैं तेई बुरे, नाहिं बुरो कोउ और।
बनिज करै सो बानियो, चोरी करै सो चोर॥ ५०॥
कछु कहि नीच न छेड़िये, भलो न वाको संग।
पाथर डारे कीच में, उछरि बिगारे अङ्ग॥ ५१॥
ऊपर दरसै सुमिल सी अंतर अनमिल आँक।
कपटी जन की प्रीति है, खीरा की सी फाँक॥ ५२॥
सबसों आगे होय कै कबहुँ न करिये बात।
सुधरे काज समाज फल, बिगरे गारी खात॥ ५३॥
बुरौ तऊ लागत भलौ, भली ठौर पर लीन।
तिय नैननि नीको लगै, काजर जदपि मलीन॥ ५४॥
क्षमा खड्ग लीने रहै, खलको कहा बसाय।
अगिन परी तृन रहित थल, आपहिते बुझि जाय॥ ५५॥
ओछे नर के पेट में, रहे न मोटी बात।
आध सेर के पात्र में, कैसे सेर समात॥ ५६॥
जूआ खेले होतु है, सुख संपति को नास।
राज काज नलते छुट्यो, पांडव किय बनवास॥ ५७॥
सरस्वति के भंडार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचै त्यों त्यों बढ़ै, बिनखरचै घटि जात॥ ५८॥
मित्र मित्र के काम को, देत विभव करि हेत।
जैसे चंद प्रकाश करि, रवि मंडल तैं लेत॥ ५९॥
लोकन के अपवाद को, डर करिये दिन रैन।
रघुपति सीता परिहरी, सुनत रजक के बैन॥ ६०॥



वैताल के नीतिमय छप्पय ।

अरुण तेज अति रूप, वरन उनको है न्यारो ।
तिमिर नाश परकाश, जगत को सिरजन हारो ॥
देव आदि नर भूप, ध्यान उन्हीं को धारो ।
प्रलय पवन जल नाश, भये इनहीं ते सारो ॥
वैताल कहे विक्रम सुनो, सकल लोक जिनतें तरत ।
भानु प्रतापी नित जान कर, नमस्कार सबहीं करत ॥ १ ॥

वचन छल्यो बलिराज, वचन कौरव व्रत खडो ।
वचन करन लगे कोश, वचन कौरव वन मडो ॥
वचन लाग हरिचन्द्र, नीच घर नारि समर्प्यो ।
वचन लाग जगदेव, शीश कंकालिहि अर्प्यो ॥
याचा वाच वैताल भनत, तो कर गहि जिह्वा काटिये ।
जर जाय लक्ष विक्रम तनय, सो बोलि वचन मत पलटिये ॥ २ ॥

पहिर भींग ले पटा, पाग शिर टेढी बाधे ।
घर में तेल न लोन, प्रीति चेरी सों साधे ॥
घातन में गढ लेय, युद्ध आखिन नहिं देखे ।
अवसर घर में जान त्रिया सों मागे लेखे ॥
जानत है सो जानन सबै, दुख सुख साथी कर्म के ।
वैताल कहें विक्रम सुनौ, ये लक्षण नामर्द के ॥ ३ ॥

मर्द शीश पर नवै, मर्द बोली पहिचाने ।
मर्द खेलावै खाय, मर्द चिन्ता नहिं माने ॥
मर्द देय औ लेय, मर्द को मर्द बचावै ।
गहिरे सकरे काम, मर्द के मर्दे आवै ॥
पुन मर्द उन्हीं को जानिये, जो दुख सुख साथी कर्म के ।
वैताल कहे विक्रम सुनो, ये सब लक्षण मर्द के ॥ ४ ॥

बुध विन करे बेपार, दृष्टि विन नाव चलावे।
सुर विन गावे गीत अर्थ विन नाच नचावे॥
गुन विन जाय विदेश, अकल विनु चतुर कहावे।
बल विन बाधे युद्ध, हौंस विन हेत जनावे॥
अन इच्छा इच्छा करे, अन दीठी बातां कहे।
बैताल कहे विक्रम सुनो, ए मूरख की जात है॥५॥
पाउ विन कटे न पंथ, बाहु विन हटे न दुरिजन।
तप विन मिले न राज, भाग्य विन मिले न सज्जन॥
गुरु विन मिले न ज्ञान, द्रव्य विन मिले न आदर।
विना पुरुष सिंगार, मेघ विन कैस दादुर॥
बैताल कहे विक्रम सुनो, बोल बोल बोली हटे।
धिक धिक ए पुरुष को, मन मिलाइ अन्तर कटे॥६॥
जीभि जाग अरु भोग, जीभि बहु रोग बढावे।
जीभि करे उद्योग, जीभि लै कैद करावे॥
जीभि स्वर्ग लै जाय, जीभि सब नरक दिखावे।
जीभि मिलावे राम, जीभि सब देह धरावे॥
निज जीभि ओठ एकत्र करि, बांट सहारे तोलिये।
बैताल कहे विक्रम सुनो, जीभि सँभारे बोलिये॥७॥
टका करै कुल हूल, टका मिरदङ्ग बजावै।
टका चढे सुखपाल, टका सिर छत्र धरावै॥
टका माय अरु बाप, टका भैयन को भैया।
टका सास अरु ससुर, टका सिर लाड लडैया॥
अब एक टके विनु टकटका, रहत लगाये रातदिन।
बैताल कहे विक्रम सुनो, धिक जीवन एक टके बिन॥८॥
मरे बैल गरियार, मरै वह अडियल टट्टू।
मरे करकसा नारि, मरै वह खसम निखट्टू॥

वाभन सो मरिजाय, हाथ लै मदिरा प्यावै ॥
पूत वही मरि जाय, जू कुल में दाग लगावै ॥
अरु वे नियाव राजा मरैं, तबै नींद भरि सोइये ॥
बैताल कहे विक्रम सुनो, एते मरे न रोइये ॥ ६ ॥
दया चट्ट ह्वै गई, धरम धँसि गयो धरन में।
पुन्य गयो पाताल, पाप भो बरन बरन में ॥
राजा करे न न्याय, प्रजा की होत खुवारी।
घर घर में बेपीर, दुखित भे सब नर नारी ॥
अब उलटि दान गजपति मगे, सील सँतोष कितै गयो।
बैताल कहे विक्रम सुनो, यह कलयुग परगट भयो ॥ १० ॥
ससि विन सूनी रैन, ज्ञान विन हिरदै सूनो।
कुल सूनो विन पुत्र, पत्र विनु तरवर सूना ॥
गज सूनो इकदंत, ललित विन सायर सूना।
विप्र सून विन वेद, और विन पुहुप विहूना ॥
हरि नाम भजन विनु सत अरु, घटा सून विन दामिनी।
बैताल कहै विक्रम सुनो, पति विन सूनी कामिनी ॥ ११ ॥

महात्मा श्री नागरीदास जी के पद।

उज्जल पछ की रैन चैन उज्जल रस दैनी।
उदित भयो उडराज अरुन दुति मन हरि लैनी ॥
महा कुपित ह्वै काम वह्न अस्त्रहि छोड्यो मनु।
प्राची दिसि ते पज्वलित आवत अगिनिउठी जनु ॥
दहन मानपुर भये मिलन को मन हुलसावत।
छावत छपा अमद चन्द ज्यों त्यों नभ आवत ॥

जगमगाति घन जोति सोत अमृत धारा से।
नव द्रुम किसलय दलनि चारु चमकत तारा से॥
सेत रजत की रैन चैन चित मैन उमहनी।
तैसी मन्द सुगन्ध कौन दिन मनि दुख दहनी॥
मधि नायक गिरिराज पदिक वृन्दावन भूपन।
फटिक सिला मनि भृङ्ग जगमगति दुति निदूपन॥
सिला सिला प्रतिचद चमकि किरननि छवि छाई।
विच विच अम्ब कदम्ब भम्ब झुकि पायनि आई॥
ठौर ठौर चहुँ फेर ढेर फूलन के साहत।
करत सुगन्धित पवन सहज मन मोहत जोहत॥
विमल नीर निरझरत कहूँ झरना सुख करना।
महा सुगन्धित सहज वास कुम कुम मद हरना॥
कहुँ कहुँ हीरन खचित रचित मण्डल सुरास के।
जटित नगन कहुँ जुगुल खभ झूलनी विलास के॥
ठौर ठौर लखि ठौर रहत मनमथ सो भारी।
विहरत विविध विहार तहाँ गिरि पर गिरिधारी॥ १॥

किते दिन विन वृन्दावन खोये।
योंही वृथा गयेते अवलौं राजस रंग समोये॥
छाडि पुलिन फूलन की सज्जा सूल सरन पर सोये।
भीने रसिक अनन्य न दर से विमुखन के मुख गोये॥
हरि विहार की ठौर रहे नहिं अति अभाग्य बल बोये।
कलह सराय बसाय भिटारी माया राँड विगोये॥
इक सर ह्याँ के सुख तजि कै ह्याँ कबहुँ हँसे कहु रोये।
कियो न अपने काज पराये भार सीस पर ढोये॥
पायो नहीं अनन्द लेस मे मै ।
नागरि दास बसे कुंजनि मे

हम ब्रज सुखी ब्रज के जीव।
प्रान तन मन नैन सरवसु राधिका को पीव॥
कहाँ आनन्द मुक्ति में यह कहाँ मृदु मुसकान।
कहाँ ललित निकुज लीला मुरलिका कल गान॥
कहा पूरन सरद रजनी जोन्ह जगमग जोत।
कहाँ नूपुर वीन धुनि मिलि रासमण्डल होत॥
कहा पाँति कदम्ब की झुकि रही जमुना बीच।
कहाँ रग विहार फागुन मचति केसर कीच॥
कहाँ श्रवनन की रतन जगमगनि दसधा रग।
कठ गद गद रोम हरखन प्रेम पुलकित अग॥
दास नागर चहत नहिं सुख मुक्ति आदि अपार।
सुनहु ब्रजवसि श्रवन में ब्रज बासनन की गार॥३॥

स्वामी हित वृन्दावन दास जी के पद।

यह छवि बाढी री रजनी खेलत रास रसिक मनि माई।
कानन वर सौरभ की महकनि तैसिय सरद जुन्हाई॥
पुलिन प्रकाश मध्य मनि मण्डल तहँ राजत हरि राधा।
प्रतिबिंबत तन दुरनि मुरनि में तव छवि बढत अगाधा॥
गौर श्याम छवि सदन वदन पर फबि रहे श्रमकन ऐसे।
नील कनक अम्बुज अतर धरे ओपि जलज मनि जैसे॥
झलकत हार चलत कल कुडल मुख मयक ज्यौं सोहैं।
वारौं सरद निसा ससि केतिक मैन कटाच्छनि मोहैं॥
थेइ थेइ वचन वदत प्रिय प्यारी प्रगटत नृत्य नई गति।
वृंद नवद हिततान गान रस अलिहित रूप कुशल अति॥१॥

हौं बलि जाऊँ मुख सुखरास।
जहाँ त्रिभुवन रूप सोभा रीझि कियो निवास॥
प्रतिबिम्ब तरल कपोल कमनी युग तरौना कान।
सुधा सागर मध्य बैठे मनौं रविगुग न्हान॥
छवि भरे नव कञ्ज दल से नेह पूरित नैन।
पूतरी मनि मधुर छौना बैठि भूले गैन॥
कुटिल भृकुटी नमित सोभा कहा कहौं विशेख।
मनहुँ ससि पर श्याम बदरी युगुल किंचित रेख॥
हरत भाल विशाल ऊपर तिलक नगनि जराय।
मनहुँ चढे विमान ग्रह गण ससिह भेटत जाय॥
मद मुसुकनि दसन दमकनि दामिनी दुति हरी।
वृन्दावन हित रूप स्वामिनी कौन विधि रचिकरी॥ २॥

सोभा केहि विधि बरनि सुनाऊँ।
यक रसना सोउ लोचन हीनी कहौ पार क्यों पाऊँ॥
अग अग लावन्य माधुरी बुधि बल किती बताऊँ।
अतुलित सुमति कहि गये क्या द्रुगपल रजि धरि जु उचाऊँ॥
नव वैसँधि दुहुनि नित उलहत जब देखौं तब और।
यहि कौतुक मेरो सुनि सजनी चित न रहत यक ठौर॥
लोक न सुनी द्रुगन नहीं देखी ऐसी रूप निकाई।
मेरी तेरी कहाँ चली खग मृग मति प्रेम बिकाई॥
कबहू गौर श्याम तन कबहुँ लोचन प्यासे धावैं।
कह घटि जात सिंधु को पछी जो चोंचन भरि लावैं॥
सुन्दरता की हद मुरलीधर वेहद छवि श्री राधा।
गावैं वपु अनन्त धरि सारद तऊ न पूजे साधा॥
न्याइ काम करवट है निकसत पिय अरु रूप गुमानी।
वृन्दावन हित रूप कियो वस सो कानन की रानी॥ ३॥

गिरिधर की कुण्डलियाँ।

पुत्र प्राण तें अधिक है, चारिउ युग परिमान।
सो दशरथ नृप परिहरे, बचन न दीन्हों जान॥
बचन न दीन्हों जान, बडन की बूझि बडाई।
बात रहे सो काज, और बरु सरबस जाई॥
कहै गिरधर कविराय, भये नृप दशरथ ऐसे।
पुत्र प्राण परिहरे, बचन परिहरे न ऐसे॥ १॥
साईं बेटा बाप के, बिगरे भयो अकाज।
हरणाकश्यप कंस को, गयो दुहुन को राज॥
गयो दुहुन को राज, बाप बेटा में बिगरी।
दुश्मन दावागीर, हँसे बहु मंडल नगरी॥
कहै गिरधर कविराय, युगन याही चलि आई।
पिता पुत्र के बैर, लाभ एको नहिं साईं॥ २॥
साईं पुर ज्वाला उठी, आसमान ते धाय।
अधहि पंगुहि छोडिके, पुरजन चले पराय॥
पुरजन चले पराय, अन्ध यक मन्त्र विचारो।
पगुहि लीन्हे कंध, दृष्ट वाकी पगु धारो॥
कहे गिरधर कविराय, सुमति ऐसी चलिआई।
विना सुमति को राज, गयो रावण को साईं॥ ३॥
दौलत पाइ न पाइये, सपने में अभिमान।
चञ्चल है दिन चार को, ठाउ न रहत निदान॥
ठाउ न रहत निदान, जियत जग में यश लीजे।
मीठे बचन सुनाय, विनय सबही सो कीजे॥
कहै गिरधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निशिदिन चारि, रहत सबहि के दौलत॥ ४॥

कहै गिरधर कविराय, सबै यामें सुधि आई।
शीतल जल फल फूल, समय जनि चूकौ साई ॥१३॥
पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम ॥
यही सयानो काम, राम को सुमिरण कीजे।
पर स्वारथ के काज, शीश आगे धरि दीजै ॥
कहै गिरिधर कविराय, बडन की याही बानी।
चलिये चाल सुचाल, राखिये अपनो पानी ॥१४॥
राजा के दरबार में, जैसे समया पाय।
साई तहाँ न बैठिये, जहाँ कोउ देय उठाय ॥
जहाँ कोउ देय उठाय, बोल अन बोले रहिये।
हसिये नाहिं हसाय, बात पूँछे ते कहिये ॥
कहै गिरधर कविराय, समय सो कीजै काजा।
अति आतुर नहिं होय, बहुरि अनखैहै राजा ॥
कृतघन कबहु न मानही, कोटि करे जो कोय।
सर्वस आगे राखिये, तऊ न अपनो होय ॥
तऊ न अपनों होय, भले की भली न माने।
काम काढि चुप रहै, फेरि तिहि नहिं पहिचाने ॥
कहै गिरिधर कविराय, रहत नितही निर्भय मन।
मित्र शत्रु ना एक, दाम के लालच कृतघन ॥ १६॥
आतम रथी शरीर रथ, बुद्धि सारथी जान।
मन डोरी इन्द्रीय हय, मारग विषय पिछान ॥
मारग विषय पिछान, देह इन्द्रिय मन योगा।
दुख सुख भोगै भोग, तत्त्ववित्त कहै प्रयोगा ॥
कहै गिरधर कविराय, है यही परमातम।
बुद्धि सारथी जान, देह रथ रथी जु आतम ॥१७॥

भया मोह मद राग पुनि, ममता दम्भ सकाम।
यह जामें नहि पाइये, सो परमेश्वर राम॥
सो परमेश्वर राम, सर्वका जाननहारा।
और सर्व अध्यस्त, आप धिष्ठान अपारा॥
कहै गिरधर कविराय, ध्यान धर सुनरे भाया।
आश्रय आशा तजि, आरोपित जिसमें माया॥१८॥
मेरी तेरी छोड कै, पक्षापक्षहिं नार।
राग द्वेष को दूर कर, निजानन्द रस चाख॥
निजानन्द रस चाख, और रस लागै फीके।
एक जान के भये, दुःख मिट जावें जी के॥
कहै गिरधर कविराय, रङ्क जो पेरै गेरी।
तब यह होवै सफल, तजे जब मेरी तेरी॥१९॥
काल काम करना जोऊ, सो तो कीजे आज।
मूल अविद्या नींदि ते, शीघ्रहि तू अब जाग॥
शीघ्रहि तूं अब जाग, अपना सब करले कारज।
ऐसो मानव देह, फेर कब मिलही आरज॥
कहै गिरधर कविराय, काट कर भ्रम के जाल।
लखो आपको ब्रह्म, कालजों जो है काल॥२०॥

पद्माकर के कवित्त

रङ्गुर कवित्त।

आयो मन हाथ तब आयवो रह्यो न कछु,
भयो गुरु ज्ञान फेर भायवो कहां रह्यो।
कहै पद्माकर सुगन्ध की तरङ्ग जैसे,
पायो सतसङ्ग फेर पायवो कहा रह्यो॥

गंगा को चरित्र लखि भाखैं यमराज ऐसे,
एरे चित्रगुप्त मेरे हुकुम में कान दे।
कहै पद्माकर ये नरकन मूँद कर,
मूँद दरवाजन को छोड़ यह थान दे।
देख यह देव-नदी किये वश देव मनि,
दूतन बुलाइ के बिदा के बेऊ पान दे।
फार डार फरद मिटेर रोज नामे डार,
खातो खत जान दे बही को वहि जान दे।
ममपुर द्वारे के किवारे लगे तारे कोऊ,
है न रखवारे ऐसे बन के उजारे हैं।
कहै पद्माकर तिहारे प्रण धारे जेते,
करि अघभारे सुरलोक को सिधारे हैं।
सुजन सुधारे करें पुरान उजियारे अति,
पतित कनारे भवसिन्धु ते उतारे हैं।
काहू नैन तारे तिन्हें गंगा तुम तारे आज,
जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं॥ ६॥

वसन्त-वर्षा-शरद ऋतु वर्णन।

फूलन में केलि में कछारन में कुजन में,
क्यारिन में कलिन कलीन किलकंत हैं।
कहै पद्माकर परागन में पौन हू में,
पानन में पीक में पलासन पतग है।
द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में,
देखो दीप दीपन में दीपत दिगत है।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरो बसत है॥ १॥

और भांति कुंजन में गुंजरत भौर भीर,
और डौर झौरन में बौरन के ह्वै गये ।
कहै पद्माकर सु औरै भांति गलियान,
छलिया छबीले छैल और छबि छ्वै गये ॥
और भांति विहग समाज में अवाज होत,
ऐसो ऋतुराज के न आज दिन ह्वै गये ।
औरै रस औरै रीति औरै राग औरै रंग,
औरै तन औरै मन औरै बन ह्वै गये ॥ २ ॥
पात बिन कीन्हें ऐसी भांति गन बेलिन के,
परत न चीन्हें जे ये लरजत लुंज हैं ।
कहै पद्माकर बिसासी या बसंत के सु,
ऐसे उतपात गात गोपिन के भुंज हैं ॥
ऊधो यह सूधो सो सदेशो कहि दीजो भले,
हरिसों हमारे ह्यां न फूले बन कुंज हैं ।
किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन की,
डारन पै डोलत अंगारन के पुंज हैं ॥ ३ ॥
मल्लिकन मंजुल मलिंद मतवारे मिले,
मंद मंद मारुत मुहीम मनसा की है ।
कहै पद्माकर त्यों नदन नदीन नित,
नागर नवेलिन की नजर नसाकी है ॥
दौरत दरेरी देत दादुर सुदुंदै दीह,
दामिनि दमंकत दिसानि में दसा की है ।
बद्दलनि बुंदनि बिलोक बगुलान बाग,
बंगलान बेलिन बहार बरषा की है ॥ ४ ॥
चंचला चमकै चहूं औरनतें चाह भरी,
चरज गई थी फेर चरजन लागीरी ।

कीधों महारुद्र जू के तीसरे बिलोचन की,
खुलन लगी है कहूँ कोर तेज तरकी ॥
ग्वाल कवि कहत सुदर्शन को म्यान किधों,
उघर्यो कहूँ तें टूटि सीवन है सरकी।
हाय विरहीन की कि लाय विरहागिन की,
देत है अराय जेठी धूप दूपहर की ॥ ३ ॥
कातिकादि चारों मास तखत बिछाय बैठ्यो,
बद्दल सजल जब छत्र छबि छाई है।
जब तब मेह धार चौंर चारु ढोरियत,
सूर दूर पौन की बजीरी सरसाई है।
ग्वाल कवि बरफ बिछावत कुहर दल,
झिरनी प्रबल नीकी नौबत बजाई है।
शीत बादशाह सो न और कोऊ दरसाय,
पाय बादशाही बांटे सबको रजाई है ॥ ४ ॥
विविध बनातें किनखाप की कनातें तामें,
दीरघ दुचोबे हैं सिचोबे हक हद्दा में।
चादनी चौबन पै परदें दरीचन में,
दुहरे दुलचे हैं गलीचे गोल गद्दी में।
ग्वाल कवि भाँति भाँति भोजन हैं भामिनी हैं,
दीप हैं दुशालें हैं मशाले मैन मद्दी में ॥
चाथि के चुहद्दी साज सोज पै बिहद्दी वेश,
कर्‍यो शीत रद्दी तब डूब्यो जाय नद्दी में ॥ ५ ॥
रैनि घटि घटि के बढन लाग्यो दिन मान,
लागी गरमान भानु दुति घट संग की।
सीरी सीरी पवन हितान लागी हियरा में,
धीरी धीरी आवत सुगंध रङ्ग रङ्ग की ॥

ग्वाल कवि कहै ठढ साझ ते सवारे लग,
उठत तरग तामे मदन उमग की ।
सीत में शिशिर की लगी है होन डगमग,
मग मग होन लागी जगमग रङ्ग की ॥ ६ ॥

—※—

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र रचित।

गगा वर्णन

नव उज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति ।
बिच बीच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि पोहति ॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत ।
जिमि नर-गन मन विविध मनोहर करत मिटावत ॥१॥
सुभग-स्वर्ग-सोपान सरिस सब के मन भावत ।
दरशन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ॥
श्रीहरिपद-नख चन्द्रकान्त मनि द्रवित सुधारस ।
ब्रह्म-कमडल मडन भव खडन सुर सरबस ॥२॥
शिव सिर-मालतिमाल, भगीरथ नृपति पुन्य फल ।
ऐरावत-गज गिरि-पति हिम-नग कंठहार कल ॥
सगर-सुवन सठ सहस्र परस जल मात्र उधारण ।
अगिनित धारा रूप धारि सागर सचारण ॥ ३ ॥
कासी कह प्रिय जानि ललकि भेट्यौ जग धाई ।
सपने हू नहिं तजी, रही अकम लपटाई ॥
कहू बँधे नवघाट उच्च गिरिवर-सम सोहत ।
कहुँ छतरी कहुँ मढी बढी मन मोहत जोहत ॥ ४ ॥
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका ॥
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका ॥

मधुरी नौबत बजत कहूं नारी नर गावत।
बेद पढत कहु द्विज कहुं जोगी ध्यान लगावत ॥ ५ ॥
कहु सुन्दरी नहात नीर कर-जुगल उछारत।
जुग अंबुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत।
धाश्रत सुन्दरि बदन करन अति ही छबि पावत।
बारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत ॥ ६ ॥
सुन्दर-ससि मुख नीर मध्य इमि सुंदर सोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत ॥
दीठि जही जहँ जात रहत तिनही ठहराई।
गंगा-छबि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई ॥ ७ ॥

यमुना वर्णन

तरनि तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल-परसन हित मनहुँ सुहाये ॥
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ॥
मनु आतप वारन तीर कों सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत ॥ १ ॥
कहूँ तीर पार कमल अमल सोभित बहु भांतिन।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पांतिन ॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज सोभा।
कै उमगे प्रिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा ॥
कै करिके कर बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ॥ २ ॥
कै पिय पद उपमान जानि एहि निज उर धारत।
कै मुख करि बहु भृंगन मिस अस्तुति उच्चारत ॥

कै ब्रज तिय गन वदन कमल की झलकत झाईं।
कै ब्रज हरिपद परस हेत कमला बहु आईं॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रजमण्डल बगरे फिरत।
कै जानि लक्ष्मी भौन एहि करि सतधा निज जल धरत॥३॥
तिन पै जेहि छिन चन्द जोति राका निसि आवति।
जल मैं मिलि कै नभ अवनी लौं तान तनावति॥
होत मुकुर मय सबै तबै उज्जल इक ओभा।
तन मन नैन जुड़ावत देखि सुन्दर सो सोभा॥
सो को कवि जो छवि कहि सकै ताछन जमुना नीर की।
मिलि अवनि और अम्बर रहत छवि इक-सी नभ तीर की॥४॥
परत चन्द्र प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो॥
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो।
कै तरंग कर मुकुर लिये सोभित छवि छायो॥
कै रास रमन मैं हरि मुकुट आभा जल दिखरात है।
कै जल उर हरि मूरति बसति ता प्रतिबिंब लखात है॥५॥
कबहुँ होत सत चन्द कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै।
कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलोलै॥
कै बाल गुडी नभ मैं उडी सोहत इत उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रज रमनी जल आवती॥६॥
मनु जुग पच्छ-पतच्छ होत मिटि जात जमुन जल।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल॥
कै कालिन्दी नीर तरङ्ग जितो उपजावत।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत॥

कै बहुत रजत चकई चलउ कै फुहार जल उच्छरत।
कै निसिपति मल्ल अनेक विधि उठि बैठत कसरत करत ॥७॥
कूजत कहु कलहंस, कहु मज्जत पारावत।
कहु कारंडव उठत कहू जल कुक्कुट धावत॥
चक्रवाक कहु बसत, कहू बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहु पियत कहू भ्रमरावलि गावत॥
कहुं तट पर नाचत मोर बहु रोर विविध पच्छी करत।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत ॥८॥
कहू बालुका विमल सकल कोमल बहु छाई।
उज्जल झलकत रजत सिढी मनु सरस सुहाई॥
पिय के आगम हेत पांवडे मनहुँ बिछाये।
रत्न रासि करि चूर कूल में मनु बगराये॥
मनु मुक्त माँग सोभित भरी, श्याम नीर चिकुरन परसि।
सत गुन छायो कै तीर में, ब्रज निवास लखि हिय हरसि॥६॥



पण्डित श्रीधर पाठक रचित।

हिमालय।

उत्तर दिशि "नगराज" अटल छवि सहित बिराजत।
लसत श्वेत सिर मुकुट झलक हिम शोभा भ्राजत॥
बदन देश सविशेष कनक आभा आभासत।
अधर भाग की श्याम बरन छबि हृदय हुलासत॥
श्वेत पीत सँग श्याम धार अनुगत सम अन्तर।
सोहत त्रिगुन त्रिदेव त्रिजग प्रतिभास निरंतर।
विलसत सो तिहुँकाल त्रिविध सुठि रेख अनूपम।
भारतवर्ष विशाल भाग भूपित त्रिपुण्ड सम॥

उज्जल ऊँचे सिखर दूर देशन लौं चमकत।
परत भानु नव किरन प्रात सुवरन सम दमकत॥
लता पुहुप घन राजि सदा ऋतुराज सुहावत।
हरी भरी डहडही वृक्षमाला मन भावत॥
कोकिल कीर कदम्ब अम्ब चढ़ि गान सुनावत।
स्यामा चारु सुगीत मधुर सुर पुनि पुनि गावत॥
कहुँ हारीत कपोत कहूँ मैना लखि परियत।
कहुँ कहुँ खेचरवर चकोर के दरसन करियत॥
देवदार की डार कहूं लगूर हिलावत।
कहुँ मर्कट को कटक वेग सों तरु तरु धावत॥
विकसित नित नव कुसुम तरुन तरु मुकुलित बौरत।
अलवेले अलि वृन्द कलिन के ढिग ढिग भौंरत॥
झरना जहँ तहँ झरत करत कल छर छर जल रव।
प्रियत जीव सो अम्बु अमृत उपमा हिम सम्भव॥
पवन सीत अति सुखत बुझावत बहु बिधि तापा।
बादर दरसत, परसत, बरसत, आपहि आपा॥
गंगा गौमुख स्रवत कहे को सोभा ताकी।
बरनै जन्मस्थली, बरकि अथवा जमुना की॥
सतलज ब्यास चिनाव प्रभृति पजाब पचजल।
सरयू आदि अनेकन नदियन को निसरन थल॥
पृष्ठ भाग रमनीक, रुचिर राजत रावण ह्रद।
ग्रहन करत निज देह, सिन्धु अरु ब्रह्मपुत्र नद॥
हरिद्वार केदार बदरिकाश्रम की शोभा।
लखि ऐसो को मनुज जासु मन कबहुँ न लोभा॥
पुनि देखिय कस्मीर देस नैपाल तराई।
सिकम और भूटान राज्य आसाम लगाई॥

दच्छिनभुज अफगान राज मस्तक सों भेंटत।
बाम बाहु से बरमा के कच भार समेटत॥
ज्यों समर्थ बलवान सुभायहिं सो उदार मन।
देत अभय, वरदान, मानयुत निज आश्रित गन॥
आर्यावर्त पुनीत ललकि हिय भरि आलिंगत।
गंगा जमुना अश्रु प्रेम प्रगटत हृदयंगत॥
अगनित पर्वत खंड चहूँ दिशि देत दिखाई।
सिर परसत आकाश चरन पाताल छुआई॥
सोहत सुन्दर खेत पाँति तर ऊपर छाई।
मानहु विधि पट हरित स्वर्ग सोपान बिछाई॥
गहरे गहरे गर्त खड्ड दीरघ गहराई।
शब्द करत ही घोर प्रतिध्वनि देइ सुनाई॥
तहाँ निपट निःशंक वन्य पशु सुख सों विचरत।
करत केलि कल्लोल मुदित आनन्दित बिहरत॥
कहुँ इंधन की ढेर सिद्ध आवास जनावत।
कहूँ समाधिस्थित जोगी की गुहा सुहावत॥
विविध विलच्छन दृश्य सृष्टि सुखमा सुख मंडल।
नन्दनवन अनुरूप भूमि अभिनय रंगस्थल॥
प्रकृति परम चातुर्य अनूपम अचरज आलय।
'श्रीधर' दृग छकि रहत अटल छवि निरखि हिमालय॥

काश्मीर वर्णन।

धनि धनि श्री काश्मीर-धरनि मनहरनि सुहावनी।
धनि कश्यप-जस ध्वजा, विश्वमोहिनि मनभावनि॥
धन्य आर्य्य—कुल—धर्म—पर्म—प्राचीन-पीठ-थल।
धन्य सारदा-सदनि अवनि, त्रैलोक्य-पुन्य फल॥

धन्य पुरातन, प्रथित धाम, अभिराम अतुल-छवि।
स्वर्ग-सहोदरि धरनि, बरनि हारे कोविद कवि॥

* * * *

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति॥
विमल अम्बु सर मुकुरन महँ मुख विम्ब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आपही तन मन वारति॥
सजति, सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी।
बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी॥
विहरति विविध विलास-भरी जोवन के मदसनि।
ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति थिरकति बनि ठनि॥
मधुर मञ्जु छवि पुञ्ज छटा छिरकति बन कुञ्जन।
चितवति, रिझवति, हसति, डसति, मुसिक्याति, हरति मन॥

* * * *

यहँ सुरूप सिंगार रूप धरि धरि बहु भाँतिन।
सर, सरिता, गिरि, शिखर, गगन, गह्वर, तरुवर, तृन॥
पूरन करिवे काज चाहना अपने मन की।
किंकरता करि रह्यौ प्रकृति-पंकज-चरनन की॥

* * * *

चहुँदिसि हिमगिरि-सिखर, हीर-मनि मौलि अवलि मनु।
स्रवत सरित सित-धार, द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु॥
फल फूलन छवि छटा छई जो घन उपवन की।
उदित भई मनु अवनि-उरसों निधि रतनन की॥
तुहिन सिखर, सरिता, सर, विपिनन की मिलि सो छवि।
छई मंडलाकार, रही चारहुँ दिसि यों फवि॥
मानहु मनिमय मौलि माल-आकृति अलबेली।

बाँधि विधि अनमोल गोल भारत सिर सेली॥

*   *   *   *

सुरपुर अरु कश्मीर दोउन में को हैं सुन्दर।
को सोभा को भौन रूप की कौन समुन्दर?
काको उपमा उचित दैन दोउन में काकौ।
याको सुर पुर की अथवा सुरपुर कौं याकौ?
याको उपमा याही की मोहि देत सुहावै।
या सम दूजौ ठौर सृष्टि में दृष्टि न आवै॥
यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुरकानन सुन्दर।
यहिं अमरन कौ ओक, यहीं कहुँ बसत पुरन्दर॥

*   *   *   *

सो श्रीधर-दृग बसी प्रेम-अम्बुद-रस दैनी।
पुन्य अवनि सुख सवनि, अलौकिक-सोभा स्त्रैनी॥
पैसु यथारथ महिमा नहिं मोहिं शक्ति बखानन।
सहसा नहिं कही सकहिं थकहिं सहसन सहसानन॥
कविगन कों कल्पना-कलपतरु काम धेनु सी।
मुनियन कौं तपधाम, ब्रह्म आनन्द धेनु सी॥
रसिकन कौं रसधाम, प्रान, सर्वस, जीवन, धन।
प्रकृति प्रेमिनी कौं सुकेलि क्रीडा-कलोल-वन॥

(काश्मीर-सुषमा से) पद्मकोट, प्रयाग।

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय रचित ।

कर्म्मवीर । ('पद्य प्रमोद' से)

(षट् पद ।)

देखकर जो विघ्न-बाधाओं को घबराते नहीं ।
भाग पर रह करके जो पीछे हैं पछताते नहीं ॥
काम कितना ही कठिन हो पर जो उकताते नहीं ।
भीड़ पड़ने पर भी जो चंचल हैं दिखलाते नहीं ॥
होते हैं थक आन में उनके बुरे दिन भी भले ।
सब जगह सब काल में रहते हैं वे फूले फले ॥ १ ॥
आज जो करना है कर देते हैं उसको आज ही ।
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही ॥
मानते जी की हैं सुनते हैं सदा सब की कही ।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगह में आप ही ॥
भूल कर वे दूसरे का मुँह कभी तकते नहीं ।
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं ॥ २ ॥
जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं ।
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं ॥
आज कल करते हुए जो दिन गँवाते हैं नहीं ।
यत्न करने में कभी जो जी चुराते हैं नहीं ॥
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके किये ।
वे नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिये ॥ ३ ॥
गगन को छूते हुए दुर्गम पहाड़ों के शिखर ।
वे घने जंगल जहाँ रहता है तम आठो पहर ॥
गर्जते जल राशि की उठती हुई ऊँची लहर ।
आग की भयदायिनी फैली दिशाओं में लवर ॥

ये कँपा सकती कभी जिसके कलेजे को नहीं।
भूलकर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं॥ ४॥
चिलचिलाती धूप को जो चाँदनी देवें बना।
काम पडने पर करें जो शेर का भी सामना॥
हँसते हँसते जो चबा लेते हैं लोहे का चना।
"है कठिन कुछ भी नहीं" जिनके है जी में यह ठना॥
कोस कितने ही चलें पर वे कभी थकते नहीं।
कौन सी है गाँठ जिसको खोल वे सकते नहीं॥ ५॥
ठीकरी को वे बना देते हैं सोने की डली।
रेग को करके दिखा देते हैं वे सुन्दर खली॥
वे बबूलों में लगा देते हैं चंपे की कली।
काक को भी वे सिखा देते हैं कोकिल-काकली॥
ऊसरों में हैं खिला देते अनूठे वे कमल।
वे लगा देते हैं उकठे काठ में भी फूल फल॥ ६॥
काम को आरंभ करके यों नहीं जो छोडते।
सामना करके नहीं जो भूल कर मुँह मोड़ते॥
जो गगन के फूल बातों से वृथा नहीं तोडते।
संपदा मन से करोडों की नहीं जो जोडते॥
बन गया हीरा उन्हीं के हाथ से है कारबन।
काँच को करके दिखा देते हैं वे उज्वल रतन॥ ७॥
पर्वतों को काटकर सडकें बना देते हैं वे।
सैकडों मरुभूमि में नदियाँ बहा देते हैं वे॥
गरगम जल निधि-गर्भ में बेडा चला देते हैं वे।
जंगलों में भी महा-मंगल रचा देते हैं वे॥
भेद नभ तल का उन्होंने है बहुत बतला दिया।
है उन्हों ने ही निकाली तार की सारी क्रिया॥

कार्य्य-थल को वे कभी नहिं पूछते "वह है कहाँ"।
कर दिखाते हैं असंभव को वही संभव यहाँ ॥
उलझनें आकर उन्हें पड़ती हैं जितनी ही जहाँ।
वे दिखाते हैं नया उत्साह उतना ही वहाँ ॥
डाल देते हैं विरोधी सैकड़ों ही अड़चलें।
वे जगह से काम अपना ठीक करके ही टलें ॥ ९ ॥
जो रुकावट डाल कर होवे कोई पर्वत खड़ा।
तो उसे देते हैं अपनी युक्तियों से वे उड़ा ॥
बीच में पड़कर जलधि जो काम देवे गड़बड़ा।
तो बना देंगे उसे वे क्षुद्र पानी का घड़ा ॥
बन खँगालेंगे करेंगे व्योम में बाजीगरी।
कुछ अजब धुन काम के करने की उनमें है भरी ॥ १० ॥
सब तरह से आज जितने देश हैं फूले फले।
बुद्धि, विद्या, धन, विभव के हैं जहाँ डेरे डले ॥
वे बनाने से उन्हीं के बन गये इतने भले।
वे सभी हैं हाथ से ऐसे सपूतों क पले ॥
लोग जब ऐसे समय पाकर जनम लेंगे कभी।
देश की औ जाति की होगी भलाई भी तभी ॥ ११ ॥

भोर का उठना।

(पद)

भोर का उठना है उपकारी।
जीवन तरु जिससे पाता है हरियाली अति प्यारी।
पा अनुपम पानिप तन बनता है बल-सञ्चय-कारी।
पुलकित, कुसुमित, सुरभित हो जाती है जन-उर क्यारी ॥
लालिमा ज्यों नभ में छाती है।
त्यों ही एक अनूठी धारा अवनी पर आती है ॥

परम-रुचिरता-सहित सुधा-बूँदों सी बरसाती है।
रसमय,मुदमय,मधुर, स्वरों-मय सब दिशा-बनाती हैं॥
तृण, वीरुध तरु, लता, बेलि को प्रतिपल पुलकाती है।
वन उपवन में रुचिर मनोहर कुसुम-व्रय खिलाती है॥
प्रान्तर-नगर ग्राम-गृह-पुर में सजीवता लाती है।
उमग उरों तन पुलक जोति नव दृग में उपजाती है॥
सदा भोर उठने वालों की यह प्यारी थाती है।
यह न्यारी निधि बड़े भाग वाली जनता पाती है॥

प्रात की किरनें कोमल प्यारी।
जहाँ तहाँ फलती तरु तरु पर दिखलाती छबि न्यारी॥
जब आलोकित करती हैं अवनी कर प्रकृति सँवारी।
तब युग नयन देख पाते हैं देव-कुसुम कल क्यारी॥
जीवन लहर जगमगा जाती है पा द्युति रुचकारी।
उर नव विभावान बनता है जैसे रजनि दिवारी॥

प्रात-पवन है परम निराली।
तन निरोग करने वाली औषध उसमें है डाली॥
उसकी अति रुचिकर शीतलता चाल मृदुलता ढाली।
कुसुम कली लौं है जी की भी कली खिलाने वाली॥
होती है जनता मलयानिल सौरभ से मतवाली।
किन्तु सामने यह रख देती है फूलों की डाली॥
प्रात-पवन ही से मिलती है प्रीतिकरी मुखलाली।
उसके सेवन से बढती है जीवन-तरु हरियाली॥

प्रात उठने में कभी न चूको।
अभिनव-किरण-जाल आरंजित नित अवलोको भू को॥
दूध फेन-सम सुकुसुम कोमल तल्प है परम प्यारा।
किन्तु कहाँ उससे सुखकर है ऊषा कालिक धारा॥

प्रात समय की सहज नींद है वह विनोदिनी मीठी।
किन्तु पास है प्रात-पवन के अति प्रियता की चीठी॥
करो निछावर आलस को उस पर कर पुलकित छाती।
प्रात अटल से जो सजीवता है धमनी में आती॥
काम काज की विविध असुविधा जीवन की बहु बाधा।
एक प्रात उठने ही से कम हो जाती है आधा॥
बालक युवा सभी पाते हैं उससे सदा सफलता।
सबके लिये प्रात का उठना है अमृत फल फलता॥

आँख का आँसू।

[चतुष्पद]

आँख का आसू ढलकता देख कर।
जी तड़प करके हमारा रह गया॥
क्या गया मोती किसी का है बिखर।
या हुआ पैदा रतन कोई नया॥ १॥
ओस की बूंदें कमल से हैं कढ़ीं।
या उगलती बूंद हैं दो मछलियां॥
या अनूठी गोलियां चांदी मढ़ी।
खेलती हैं खंजनों की लड़कियां॥ २॥
या जिगर पर जो फफोला था पड़ा।
फूट करके वह अचानक बह गया॥
हाय! था अरमान जो इतन बड़ा।
आज वह कुछ बूँद बन कर रह गया॥ ३॥
पूछते हो तो कहो मैं क्या कहूं।
यों किसी का है निरालापन गया॥
दर्द से मेरे कलेजे का लहू।
देखता हूं आज पानी बन गया॥ ४॥

प्यास थी इस आँख को जिसकी बनी।
वह नहीं इसको सका कोई पिला॥
प्यास जिससे हो गई है सौगुनी।
वाह! क्या अच्छा इसे पानी मिला॥ ५॥

ठीक कर लो जाँच लो धोखा न हो।
वह समझते हैं मकर करना इसे॥
आँख के आँसू निकल करके कहो।
चाहते हो प्यारे जतलाना किसे॥ ६॥

आंख के आंसु समझ लो बात यह।
आन पर अपनी रहो तुम मत अड़े॥
क्यों कोई देगा तुम्हें दिल में जगह।
जब कि दिल में से निकल तुम यों पड़े॥

हो गया कैसा निराला यह सितम।
भेद सारा खोल क्यों तुमने दिया॥
यों किसी का हैं नहीं खोते भरम।
आंसुओं! तुमने कहो यह क्या किया॥ ८॥

झांकता फिरता है कोई क्यों कुँआ।
हैं फसे इस रोग में छोटे बड़े॥
है इसी दिल से तो वह पैदा हुआ।
क्यों न आँसू का असर दिल पर पड़े॥ ६॥

रंग क्यों इतना निराला कर लिया।
है नहीं अच्छा तुम्हारा ढंग यह॥
आंसुओं! जब छोड़ तुमने दिल दिया।
किस लिये करते हो फिर दिल में जगह॥ १०॥

बात अपनी ही सुनाता है सभी।
पर छिपाये भेद छिपता है कहाँ॥

जब किसी का दिल पसीजेगा कभी।
आँख से आँसू कढ़ेगा क्यों नहीं ॥ ११ ॥
आँख के परदों से जो छनकर बहे।
मैल थोड़ा भी रहा जिसमें नहीं ॥
बूँद जिसको आँख टपकती रहे।
दिल जलों को चाहिये पानी वही ॥ १२ ॥
हम कहेंगे क्या कहेगा यह सभी।
आँख के आसू न ये होते अगर ॥
बावले हम हो गये होते कभी।
सैकड़ों टुकड़े हुआ होता जिगर ॥ १३ ॥
है सगों पर रंज का इतना असर।
जब कड़े सदमे कलेजे ने सहे ॥
सब तरह का भेद अपना भूल कर।
आँख के आसू लहू बन कर बहे ॥ १४ ॥
क्या सुनावेंगे भला अब भी खरी।
रो पड़े हम पत तुम्हारी रह गई ॥
ऐंठ थी जी में बहुत दिन से भरी।
आज वह इन आँसुओं में बह गई ॥ १५ ॥
बात चलते खुल पड़ा आसू थमा।
खुल पड़े बड़ी सुनाई रो दिया ॥
आज तक जो मैल था जी में जमा।
इन हमारे आसुओं ने धो दिया ॥ १६ ॥
क्या हुआ अंधेर ऐसा है कहीं।
सब गया कुछ भी नहीं अब रह गया ॥
ढूँड़ते हैं पर हमें मिलता नहीं।
आसूओं में दिल हमारा बह गया ॥ १७ ॥

लाल आखें कीं, बहुत बिगड़े घने।
फिर उठाई दौड़ कर अपनी छड़ी॥
वैसे ही अब भी रहे हम तो तने।
आँख से यह बूंद कैसी ढल पड़ी॥ ३१॥
बूंद गिरते देख कर यों मत कहो।
आँख तेरी गड़ गई या लड़ गई॥
जो समझते हो नहीं तो चुप रहो।
ककरी इस आख में है पड़ गई॥ ३२॥
है यहां कोई नहीं धुआँ किये।
लग गई मिरचें न सरदी है हुई॥
इस तरह आँसू भर आयें किस लिये।
आँख में ठढी हवा क्या लग गई?॥ ३३॥
देख करके और का होते भला।
आँख जो बिन आगही यों जल मरे॥
दूर से आंसू उमड़ कर तो चला।
पर उसे कैसे भला ठढा करे॥ ३४॥
पाप करते हैं न डरते हैं कभी।
चोट इस दिल ने अभी खाई नहीं॥
सोच कर अपनी बुरी करनी सभी।
यह हमारी आख भर आई नहीं॥ ३५॥
है हमारे औगुनों की भी न हद।
हाय! गरदन भी उधर फिरती नहीं॥
देख करके दूसरों का दुख दरद।
आख से दो बूद भी गिरती नहीं॥ ३६॥
किस तरह का वह कलेजा है बना।
जो किसी के रंज से हिलता नहीं॥

आंख से आसू छना तो क्या छना।
दर्द का जिसमें पता मिलता नहीं ॥ ३७ ॥
यह कलेजा हो कई टुकडे अभी।
नाम सुनकर जो पिघल जाता नहीं ॥
फूट जाये आख वह जिसमें कभी।
प्रेम का आसू उमड आता नहीं ॥ ३८ ॥
पाप में होता है सारा दिन बसर।
सोच कर यह जी उमड़ आता नहीं ॥
आज भी रोते नहीं हम फूट फर।
आसुओं का तार लग जाता नहीं ॥ ३९ ॥
बू बनावट की तनक जिनमें न हो।
चाह की छींटें नहीं जिन पर पडी ॥
प्रेम के उन आसुओं से हे प्रभो!
यह हमारी आख तो भींगी नहीं ॥ ४० ॥

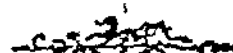


लाला भगवानदीन रचित।

(प्रेम मंत्र। 'मनोरंजन' से)

चढ पहाड पर यही पुकारो, मैदानों में यही उचारो।
"घृणा द्वेष सब दूर धरेंगे, सबसे मिल मिल प्रेम करेंगे।"
प्रेम फौज का साज सजा कर, प्रेम दुदुभी मधुर बजाकर।
सहमत हो सब काम करेंगे, भारत में आनन्द भरेंगे ॥
दिन में निशि में सभी समय में, मस्तक में और मृदुल हृदय में।
यह विचार मित्रों के भरना, "पारस्परिक द्वेष परि हरना।"
"द्वेषभाव में आग लगाकर, झूठ और अन्याय भगाकर।"
"सब पर प्रेम वारि ढारेंगे, भारत के सुकार्य सारेंगे ॥"

जल में थल में और पवन में, हिन्दूगण में और यवन में।
फैला द्दो विचार शुभ ऐसा, "हम में तुम में अन्तर कैसा?"
"भाई है घर एक हमारा, भाई बन कर करो गुजारा।"
तब सबके सब काम करेंगे, भारत में सुख चैन भरेंगे।
लोभ क्रोध को मार भगाओ, वैर वाद ये आग लगाओ॥
प्रेम राज्य जग में फैलाओ, प्रेम प्रेम की धूम मचाओ।
भारत का जो भला विचारो, यह सिद्धान्त हृदय में धारो॥
"प्रेम मन्त्र जिसने मन धारा, उसने विजय किया जग सारा"
प्रेम रज्जु सिंहों को बाधे, प्रेम मन्त्र सब कारज साधे॥
प्रेम आँच पत्थर पिघलावे, प्रेम वायु ब्रह्माड हिलावे।
प्रेम-चोट हीरे को फोड़े, प्रेम-गोंद टूटे को जोड़े॥
हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, चखो परस्पर प्रेम मिठाई।



पण्डित रामचरित उपाध्याय कृत।

बन्धु विलाप ('रामचरित चिन्तामणि' से)

लक्ष्मण गिरे घन-नाद की जब शक्ति आ उर में लगी,
रोके रुकी रण में न तब भयभीत कपि-सेना भगी।
अति-दीन मुख-गत चेत लक्ष्मण को लखा जब राम ने,
होकर विकल करने लगे रोदन सभी के साम्हने॥ १॥
धोखा न दो भैया! मुझे इस भांति आकर के यहा,
मझधार में मुझको बहा कर तात! जाते हो कहा।
जाने न पावोगे, नहीं मारा गया अरि-दल अभी,
तुमको न करना चाहिये हे भ्रात! मुझसे छल कभी॥ २॥
भैया तुम्हीं यदि चलि बसोगे, मैं करूँगा क्या यहा?
मैं भी चलूगा साथ मैं तुम तात! जावोगे जहां।

शिवसिंहसरोज

एक सहस्र कवियों का जीवनचरित्र



सम्पादकर्त्ता

स्व० ठाकुर शिवसिंहजी सेंगर

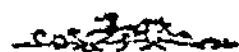
काँथा, जिला उन्नाव

प्रकाशक —

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ.

सन् १९२६ ई०

जल में थल में और पवन में, हिन्दूगण में और यवन में ।
फैला दो विचार शुभ ऐसा, "हम में तुम में अन्तर कैसा?"
"भाई है घर एक हमारा, भाई बन कर करो गुजारा ।"
तब सबके सब काम करेंगे, भारत में सुख चैन भरेंगे ।
लोभ क्रोध को मार भगाओ, वैर वाद ये आग लगाओ ॥
प्रेम राज्य जग में फैलाओ, प्रेम प्रेम की धूम मचाओ ।
भारत का जो भला विचारो, यह सिद्धान्त हृदय में धारो ॥
"प्रेम मन्त्र जिसने मन धारा, उसने विजय किया जग सारा"
प्रेम रज्जु सिंहों को बांधे, प्रेम मन्त्र सब कारज साधे ॥
प्रेम आँच पत्थर पिघलावे, प्रेम वायु ब्रह्माण्ड हिलावे ।
प्रेम-चोट हीरे को फोडे, प्रेम-गोंद टूटे को जोडे ॥
हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, चखो परस्पर प्रेम मिठाई ।



पण्डित रामचरित उपाध्याय कृत ।

वन्धु विलाप ('रामचरित चिन्तामणि' से)

लक्ष्मण गिरे घन नाद की जब शक्ति आ उर में लगी,
रोके रुकी रण में न तब भयभीत कपि सेना भगी ।
अति-दीन मुख गत-चेत लक्ष्मण को लखा जब राम ने,
होकर विकल करने लगे रोदन सभी के साम्हने ॥ १ ॥
धोखा न दो भैया ! मुझे इस भांति आकर के यहां,
मझधार में मुझको बहा कर तात ! जाते हो कहां ।
जाने न पाओगे, नहीं मारा गया अरि दल अभी,
तुमको न करना चाहिये हे भ्रात ! मुझसे छल कभी ॥ २ ॥
तुम्हीं यदि चलि बसोगे, मैं करूँगा क्या यहां ?
चलूगा साथ में तुम तात ! जाओगे जहां ।

अब जानकी की जान भी बँचन न पावेगी कभी,
अब हा! अयोध्या देखने मैं भी न आवेगी कभी ॥ ३ ॥
यदि जानकी सी नायिका मिल जाय तो अचरज नहीं,
साकेत से कुछ कम न है अमरावती की भी मही।
पर हाय! अनुगामी अनुज तुम सा मिलेगा अब कहाँ,
सोना सुगन्धित खोजने पर भी मिलेगा कब कहाँ? ॥ ४॥
सौमित्र! तुम सब काम में मुझसे सदा पीछे रहे,
मेरे लिये क्या क्या न तुमने हृद्विदारक दुख सहे?।
पर अग्रगामी आज क्यों बनने लगे हा बोल दो,
देखो तनिक मेरी दशा को शीघ्र आँखे खोल दो ॥ ५ ॥
जिस रीति से आए जगत में बस उसी क्रम से चलो,
शोकाग्नि में मैं हूँ गिरा, मत इस समय मुझको छलो।
कुछ काल तक ठहरो अभी आगे चलूंगा मैं वहाँ,
मुझको यहाँ पर छोड तुम हो चाहते जाना जहाँ ॥ ६ ॥
तुम हाथ मेरा छोडते हो साथ देगा कौन अब?।
क्या रुष्ट हो मुझसे? कहो कैसे हुए हो मौन अब।
मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण कैसे हो सकेगी अब यहां,
तुम भी रहोगे जो नहीं, मैं क्या करूँगा तब यहां? ॥ ७ ॥
निज कम को प्रिय धर्म को भी छोड दूँगा मैं अभी,
परिवार से संसार से मुख मोड दूँगा मैं अभी।
पर स्वप्न में भी एक पल तुमको न छोडूंगा कभी,
तुमसे रहित हो शत्रुओं से कर न जोडूँगा कभी ॥ ८ ॥
मेरे करों से क्षीर पी कर, तिल विमिश्रित नीर क्यों-
पीना चाहते हो? हो गये बेपीर क्यों?।
हा बन्धु! पहले चिता में मैं गिरूँगा गोद में ले कर तुम्हें ॥
जीवित रहूँगा हाय! कैसे काल को देकर तुम्हें ॥ ९ ॥

अन्तिम क्रिया मैंने पिता की की नहीं, की गिद्ध की,
उपकार के सत्कार में उसको मिली गति सिद्ध की।
इस हेतु क्या विधि रुष्ट होकर मारने तुमको चला ?
चलने न पावेगी अनुज पर एक भी उसकी कला ॥१०॥
तुमको मिटाने के प्रथम विधि, आप ही मिट जायगा,
यमराज भी निज राज से बस आज ही हट जायगा।
कैसे तुम्हारा लय प्रलय आए बिना हो जायगा,
खोना पड़ेगा तब तुम्हें संसार जब खो जायगा ॥११॥
सीता गईं तुम भी चले, मैं भी न जीऊँगा कभी,
सुग्रीव को भी साथ ले घर जायँगे बन्दर सभी।
पर हाय ! भैया यह विभीषण भक्त जावेगा कहाँ ?
मेरे लिये हो कर अकिंचन ठौर पावेगा कहाँ ? ॥१२॥
सीता-हरण मेरा मरण सुन कैकयी होवे सुखी,
पर शेष मातायें भला कैसे न होवेंगी दुखी।
किस दुर्दशा को प्राप्त होंगी वे, कहो कुछ ध्यान है ?
क्यों बोलते कुछ हो नहीं, मैं कौन हूँ कुछ ज्ञान है ? ॥१३॥
मैं सब अनर्थों का जनक माता हृदय, का शूल हूँ।
रघुवंश का अगार हूँ सब विग्रहों का मूल हूँ॥
मानो मही पर हो गया मेरा अपरिमित भार है,
मुझसे अभागे का सदा धिक्कार है धिक्कार है ॥१४॥
वन में तुम्हें खो कर अयोध्या में न जाऊँगा कभी,
जा कर वहां कैसे किसी को मुख दिखाऊँगा कभी।
स्वर में पिता से क्या कहूँगा, यदि चलूँगा मैं वहाँ,
मैं क्या करूँ कैसे मरूँ, बोलो अनुज जाऊँ कहाँ ? ॥१५॥
धनहीन हो, जनहीन हो स्त्रीहीन हो जीता रहा,
वह कौन ऐसा दुःख है मुझ पर न जो बीता रहा।

केवल तुम्हारा बल रहा विधि ने उसे भी ले लिया,
निज कुल, विनाशक हो अनुज क्या पाप था मैंने किया ॥१६॥
मेरे सहायक वन अनुज! वन में स्वयं आप रहे,
मेरे लिए ही हा वृथा तुमने अनेकों दुख सहे।
मुझको अकेला छोड कर क्यों भागते हो अब कहो।
मैंने तुम्हारा साथ छोडा था कहा पर कब कहो ॥१७॥
यदि भेंट होगी जानकी से या सुमित्रा से कहीं।
तो क्या कहूँगा मैं तनिक उठ कर बताओ तो सही।
यदि तुम नहीं तो कुछ नहीं मेरा रहा संसार में,
सर्वस्व मेरा नष्ट हो कर मिल गया अब छार में ॥१८॥
संजीवनी लाने गया हनुमान भी आया नहीं,
मारा गया वह, या उसे उसने अभी पाया नहीं।
होते सवेरा -कूच डेरा आपका हो जायगा,
लक्ष्मण! शमन तब केकयी के ताप का हो जायगा ॥१९॥

इसी बीच में वायु के पुत्र आये,
हुई युक्ति सौमित्र ने प्राण पाये।
मिले बन्धु दोनों, टला शोक भारी
विधे! वन्ध है लोक-लीला तुम्हारी ॥ २० ॥

सज्जन। ('सूक्तिमुक्तावली' से)

ऊँच नीच दोनों में, सज्जन कुछ भी न भेद रखता है।
फूल सुगन्धित करता है देखो युग्म हाथों को ॥ १ ॥
यद्यपि निष्फल तो भी, सज्जन खल का सहाय करता है।
क्या फल है ऊपर से, मेघ घना भी बरसाता है ॥ २ ॥
सङ्कट में भी सज्जन, स्वभाव अपना कभी नहीं तजता।
अर्ध-ग्रसित सुधाकर सुखकर होता कुमुद-वन को ॥ ३ ॥

सज्जन जो कहता है, चाहे कुछ हो न फिर पलटता है।
दात निकल करिवर के, भीतर क्या फिर कभी जाते हैं?॥ ४॥
दुख सह कर भी सज्जन, पर-दुख को वह न देख सकता है।
आतप सहकर भी नरु, छाया देता पथिक-जन को॥ ५॥
अति दुख में भी सज्जन, नहीं करेगा कभी बुरे कर्म।
छाँछ नहीं छुता है, हस भले ही मरे भूखों॥ ६॥
सज्जन ही पर क्या, अच्छी चीजें बहुत नहीं होतीं।
मोती कहीं कहीं है, सीप सभी ठौर मिलता है॥ ७॥
पारस-सम पारस है, कल्पद्रुम के समान कल्पद्रुम।
सुरभी सम सुरभी है, सज्जन ही तुल्य सज्जन के॥ ८॥

चन्दन और सज्जन की समता।

दीन साधु क्या दे सकता है? पर निज गुण से खुश करता है।
चन्दन नहो खिलाता फल को, किन्तु चाह उसकी भूतल को॥१॥
यद्यपि दुर्जन दुख देता है, तो भी उसे साधु सेता है।
चन्दन का विष देता विषधर, वह उसका रखता है उसपर॥२॥
सज्जन घिस जाता है तो भी, पर-उपकार किया करता है।
चन्दन घिस जाता है तो भी, निज आमोद दिया करता है॥३॥
नीच जाति भी होकर सज्जन, निज गुण से गौरव पाता है।
अहा काठ भी होकर चन्दन, ईश शीश पर चढ जाता है॥४॥
पड जावे कुसङ्ग में सज्जन, तो भी उसमें गुण रहता है।
अहि के सँग रहता है चन्दन, जन-सताप तदपि रहता
सज्जन स्वार्थ नहीं रखता है, निज समान सबको क
मय सुगन्धित होकर चन्दन, अपने सम कर देता
घ रता हुआ शत्रु सम्मानित, सुख स हा
हुआ धूम आमोदित—पावक का, चन्दन

अपने प्राणों को भी देकर, पर-दुख को भञ्जन करता है।
चन्दन भी ज्यों कट जाने पर तनों को शीतल, करता है ॥ ८॥

माता का पुत्र को उपदेश।

पुत्र ! साथ तेरे रहती हूँ, तेरे हित में चित धरती हूँ।
इस कारण जो कुछ करती हू, सुनकर उसे हृदय में धरना ॥१॥
रात नहीं है अब उठ बैठो, आलस से निज देह न ऐंठो।
सत्य-सुधार सिन्धु में पैठो, पुत्र चित्त में जरा न डरना ॥ २ ॥
रहे नहीं वे पिता तुम्हारे, चेत करो नैनों के तारे।
होगे जो तुम भी न सहारे, बेटा ! मेरा कठिन उबरना ॥ ३ ॥
संकट में भी कभी न रोना, धर्म कर्म से विमुख न होना।
जग जाने पर कभी न सोना, पुत्र ! प्रथम हरिनाम सुमिरना ॥४॥
पर से अपना दुःख न कहना, गुरुजन की बातें तुम सहना।
सच्चरित्र बन कर नित रहना, इधर उधर सुत ! वृथा न फिरना ॥५॥
साहस, शक्ति, धीरता, उद्यम, सीखो ये गुण करो पराक्रम।
ईश सहायक होगा हरदम, आलस नद में भूल न गिरना ॥ ६ ॥
शिवि, दधीचि, कर्णादि कहानी, सुनकर सीखो नीति पुरानी।
बनना कभी न सुत ! अभिमानी, परहित से तुम कभी न मुड़ना ॥७॥
जबतक तुम पयपान करोगे, नित नीरोग-शरीर रहोगे।
फूलोगे नित नये फलोगे, पुत्र ! कभी मदपान न करना ॥ ८ ॥
भीख माँगना एकदम छोड़ो, दासवृत्ति से भी मुख मोड़ो।
सबके साथ, अपनपो जोड़ो, पढ़ो पुत्र ! शुभ उद्यम करना ॥ ९ ॥
जो कुछ कहदो हाथ उठाकर, उससे कभी हटो मत तिल भर।
सभ्य और शिक्षित कहलाकर, उचित सदा प्रण-पालन करना ॥१०॥
पर दुख को अपना दुख मानो, देश-मान को अपना जानो।
पुत्र ! वृथा ही हठमत ठानो, सीखो तुम पर-दुख को हरना ॥११॥

निज पूर्वज लोगों ने कैसे, काम किये, रहते थे कैसे।
उचित तुम्हारा रहना वैसे, अनुचित बेटा! उससे डरना ॥१२॥
स्वारथ को जो धर्म समझते, पर को दुख देकर हैं हँसते।
ईश्वर से भी तनिक न डरते, समझो उन्हें शीघ्र है मरना ॥१३॥
जो धोखा देने वाला हो, मुँह मीठा दिल का काला हो।
सागर हो या नद नाला हो, उसके साथ कभी मत तरना ॥१४॥
कपटी, कुटिल, कुमति, कुलघालक हैं पर बनते हैं जगपालक।
जो ऐसे हों, हे प्रिय बालक! उनकी हाँ में हाँ मत करना ॥१५॥
जहाँ न्याय का नाम नहीं है, पक्षपात की धार बही है।
मेरा यह उपदेश सही है, पुत्र वहाँ तू नहीं ठहरना ॥१६॥

श्रीयुत मैथिली शरण गुप्त रचित।

स्वर्गीय संगीत। ('सरस्वती' से)

नर हो, न निराश करो मन को।
कुछ काम करो कुछ काम करो,
जग में रह के कुछ नाम करो।
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो,
समझो जिसमें यह व्यर्थ न हो।
कुछ तो उपयुक्त करो तन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥ १ ॥
सँभलो कि सुयोग न जाय चला,
कब व्यर्थ हुआ सदुपाय भला?
समझो जग कौन निरा सपना,
पथ आप प्रशस्त करो अपना।

अखिलेश्वर हैं अवलम्बन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥ २ ॥
जल तुल्य निरन्तर शुद्ध रहो,
प्रबलानल ज्यों अनिरुद्ध रहो।
पवनोपम सत्कृति सील रहो,
अवनीतलवद् धृतिशील रहो।
कर लो नभ सा शुचि जीवन को,
नर हो न निराश करो मन को ॥ ३ ॥
जब हैं तुम में सब तत्त्व यहां,
फिर जा सकता वह सत्त्व कहां ?
तुम स्वत्व सुधारस पान करो,
उसके अमरत्व विधान करो।
दव-रूप रहो भव कानन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥ ४ ॥
निज गौरव का नित ज्ञान रहे,
"हम भी कुछ हैं" यह ध्यान रहे।
सब जाय अभी, पर मान रहे,
मरणोत्तर गुञ्जित गान रहे।
कुछ हो, न तजो निज साधन को,
नर हो न निराश करो मन को ॥ ५ ॥
प्रभु ने तुमको कर दान किये,
सब वाञ्छित वस्तु विधान किये।
तुम प्राप्त करो उनको न अहो,
फिर है किसका यह दोष कहो ?
समझो न अलभ्य किसी धनको,
नर हो, न निराश करो मन को ॥ ६ ॥

किस गौरव के तुम योग्य नहीं ?
कब कौन तुम्हें सुख भोग्य नहीं ?
जन हो तुम भी जगदीश्वर के,
(सब हैं जिसके अपने घर के)
फिर दुर्लभ क्या उसके जन को ?
नर हो, न निराश करो मन को ॥ ७ ॥
करके विधिवाद न खेद करो।
निज लक्ष्य निरन्तर भेद करो।
बनता बस उद्यम ही विधि है,
मिलता जिससे सुख का निधि है।
समझो धिक निष्क्रय जीवन को,
नर हो न निराश करो मन को ॥ ८ ॥



श्रीयुत "सनेही" रचित।

धीर नर। ('सरस्वती' से)

पड़े विपद पर विपद किन्तु पद पीछे नहीं हटाते हैं;
अपना रोना कभी न रोते साहस नहीं घटाते हैं।
बन पड़ता है जहाँ तलक दोनों का दुःख घटाते हैं;
निज पौरुष से समर भूमि में अरि को धूल चटाते हैं।
वही धीर नर धरा धाम में धवल कीर्त्ति नित पाते हैं ॥ १ ॥
अत्याचारी की गर्दन को झट मरोड़ वे देते हैं,
अन्यायी का मुख थप्पड़ से सदा मोड़ वे देते हैं।
कोटि विघ्न आ पड़ें कार्य्य निज नहीं छोड़ वे देते हैं,
लाख विफलताओं पर भी दिल नहीं तोड़ वे देते हैं।

धीर धुरन्धर वही वीर वर विश्व-विदित हो जाते हैं ॥ २ ॥
मनुज केसरी इस भव-वन में भय-गज मार-भगाते हैं,
पडे लोह पिंजडे में तो भी घास-कदापि न खाते हैं।
दम में दम जब तक रहता है अपनी आन निभाते हैं,
श्वान समान दशन दिखला कर वे दुम नहीं हिलाते हैं।
उनकी सूरत देख भीरु भय भूरि भरे थर्राते हैं ॥ ३ ॥
चाल चले उनमें कोई क्या नहीं काल से डरते हैं।
शूरों की संसार-समर में सन्तत करणी करते हैं ॥
मार मार कर दुष्ट दलों को भार भूमि का हरते हैं।
हो जाते हैं अमर जगत में कभी नहीं वे मरते हैं ॥
कीर्ति-कौमुदी से अपनी वे विमल चन्द्र बन जाते हैं।
अटल सदा निज प्रण पर रहते करते सत्पथ त्याग नहीं ॥
अत्याचारी अधम जनों से उनको है अनुराग नहीं।
नहीं चाहते हलुआ पूडी असन मिले पर साग नहीं ॥
पर स्वतन्त्रता पर वे अपनी लगने देते दाग नहीं।
धृति धारण कर भुव से बनते धीर वही कहलाते हैं ॥ ५ ॥

—०—

श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय रचित ।

वन विहगम । ('प्रभा' से)

(१)

वन बीच बसे थे, फँसे थे ममत्व में, एक कपोत कपोती कहीं।
दिन रात न एक को दूसरा छोडता, ऐसे हिले मिले दोनों वहां ॥
बढने लगा नित्य नया नया नेह, नई नई कामना होती रहीं।
कहने का प्रयोजन है इतना, उनके सुख की रही सीमा नहीं ॥

(२)

रहता था कबूतर मुग्ध सदा, अनुराग के राग में मस्त हुआ।
करती थी कपोती कभी यदि मान, मनाता था पास जा व्यस्त हुआ॥
जब जो कुछ चाहा कबूतरी ने, उतना वह वैसे समस्त हुआ।
इस भांति परस्पर पक्षियों में भी प्रतीति से प्रेम प्रशस्त हुआ॥

(३)

सुविशाल वनों में उड़े, फिरते अवलोकते प्राकृत चित्र-छटा।
कहीं शस्य से श्यामल खेत खड़े, जिन्हें देख घटा का भी मान घटा॥
कहीं कोसों उजाड़ में झाड़ पड़े, कहीं आड़ में कोई पहाड़ सटा।
कहीं कुंज, लता के वितान तने, सब फूलों का सौरभ था सिमटा॥

(४)

झरने झरने की कहीं झनकार, फुहार का हार विचित्र ही था।
हरियाली निराली, न माली लगा, फिर भी सब ढंग पवित्र ही था॥
ऋषियों का तपोवन था, सुरभी का जहां पर सिंह भी मित्र ही था।
बस, जान लो, सात्विक सुन्दरता, सुखसंयुत शान्ति का चित्र ही था॥

(५)

कहीं झील किनारे बड़े बड़े ग्राम, गृहस्थ निवास बने हुए थे।
खपरैलों में कद्दु, करैलों की बेल के खूब तनाव तने हुए थे॥
जल शीतल, अन्न जहां पर पाकर, पक्षी घरों में घने हुए थे।
सब ओर स्वदेश-स्वजाति-समाज-भलाई के ठान ठने हुए थे॥

(६)

इस भाँति निहारते लोक की लीला, प्रसन्न वे पक्षी फिरें घर को।
उन्हें देखते दूर ही से, मुख खाल के, बच्चे चलें चट बाहर को॥
दुलराने, खिलाने-पिलाने से था अवकाश उन्हें न घड़ी भर को।
कुछ ध्यान ही था न कबूतर को, कहीं काल चढ़ा रहा है शर को॥

(७)

दिन एक बड़ा ही मनोहर था, छवि छाई वसन्त की कानन में।
सब ओर प्रसन्नता देख पड़ी, जड़—चेतन के तन में, मन में ॥
निकले थे कपोत-कपोती कहीं, पड़े झुंड में घूम रहे वन में।
पहुँचा यहाँ घोसले पास शिकारी, शिकार की ताक में निर्जन में ॥

(८)

उस निर्दय ने उसी पेड़ के पास, बिछा दिया जाल को कौशल से।
यहाँ देख के अन्न के दाने पड़े, चले बच्चे, अभिज्ञ जो थे छल से।
नहीं जानते थे, कि यहीं पर है कहीं, दुष्ट भिड़ा पड़ा भूतल से॥
बस, फाँस के वास के बन्धन में, कर देगा हलाल हमें बल से॥

(९)

जब बच्चे फँसे उस जाल में जा, तब वे घबड़ा उठे बन्धन में।
इतने में कबूतरी आई वहाँ, दशा देख के व्याकुल हो मन में—
कहने लगी, "हाय हुआ यह क्या! सुत मेरे हलाल हुए वन में!
अब जाल में जाके मिलूं इनसे, सुख ही क्या रहा इस जीवन में!"

(१०)

उस जाल में जाके बहेलिये के, ममता से कबूतरी आप गिरी।
इतने में कपोत भी आया वहाँ, उस घोसले में भी विपत्ति निरी।
लखते ही अँधेरा सा आगे हुआ, घटना की घटा वह घोर घिरी।
नयनों से अचानक बूंद गिरे, चेहरे पर शोक की स्याही फिरी॥

(११)

तब दीन कपोत बड़े दुख से कहने लगा—"हा! अति कष्ट हुआ।
निबलों ही को दैव भी मारता है" ये प्रवाद यहां पर स्पष्ट हुआ॥
सब सूना किया, चली छोड़ प्रिया, सब ही विधि जीवन नष्ट हुआ।
इस भांति अभागा अतृप्त ही, मैं, सुख भोग के स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ॥

(१२)

कल कूजन केलि-कलोल में लिप्त हो, बच्चे मुझे जो सुखी करते।
जब देखते दूर से आता मुझे, किलकारियाँ मोद से जो भरते॥
समुहाय के, धाय के, आय के पास, उठाय के पद नहीं डरते।
वही हाय ! हुए असहाय, अहो ! इस नीच के हाथ से हैं मरते॥

(१३)

गृह-लक्ष्मी नहीं, जो जगाए रहा करती थी सदा सुख-कल्पना को।
शिशु भी तो नहीं, जो उन्हीं के लिये सहता इस दारुण वेदना को॥
वह सामने ही परिवार पड़ा पड़ा भोग रहा यमयातना को।
"अब मैं ही वृथा इस जीवन को रख कैसे सहूँगा विडम्बना को?"

(१४)

यहा सोचता था यों कपोत, वहा चिड़ीमार ने मार निशाना लिया।
गिर, लोट गया धरती पर पक्षी, बहेलिये ने मन माना किया॥
पल में, कुल का कुल काल कराल ने 'भूत-भविष्य' में भेज दिया।
क्षणभंगुर जीवन की गति का यह एक निदर्शन है बढ़िया॥

(१५)

हर एक मनुष्य फँसा जो ममत्व में, तत्त्व महत्त्व को भूलता है।
उसके शिर पै खुला खड्ग सदा, बँधा धागे में धार से झूलता है।
वह जाने विना विधि की गति को, अपनी ही गढन्त में फूलता है॥
पर अन्त को ऐसे अचानक अन्तक अस्त्र अवश्य ही हूलता है।

(१६)

पर जो जन भोग के साथ ही योग के काम पवित्र किया करता।
परिवार से प्यार भी पूर्ण रखे, पर-पीर परन्तु सदा हरता॥
निज भावन भूलि के, भावी न भूल के, विघ्न व्यथा को नहीं डरता।
कृतकृत्य हुआ हँसते हँसते, वह सोच सकोच विना मरता।

(१७)

प्रिय पाठक ! आप तो विज्ञ ही हैं फिर आपको क्या उपदेश करें।
शिर पै शर ताने बहेलिया काल खडा हुआ है, यह ध्यान धरें॥
दशा अन्न की होती कपोत की ऐसी, परंतु न आप जरा भी डरें।
निज धर्म के कर्म सदैव करें, कुछ चिन्ह यहां पर छोड मरें॥

—*—

श्रीयुत कामताप्रसाद गुरुलिखित।

ꕥ बेटी की बिदा ꕥ

प्यारी बहिन! सौंपती हूँ मैं अपना तुम्हें खजाना।
है इस पर अधिकार तुम्हारे बेटे का मनमाना॥
रक्त मास औ हाड हमारा है यह बेटी प्यारी।
करो इसे स्वीकार हुई यह अब सब भांति तुम्हारी॥ १॥
पूजे कई देवता हमने तब इसको है पाया।
प्राण समान पाल कर इसको इतना बडा बनाया॥
यही आतमा आज हमारी हम से बिछुड रही है।
समझाती हूँ जी को तो भी धरता धीर नहीं है॥ २॥
बहिन! ढिठाई माता की तुम मन म नेक न धरियो।
इस कोमल चिरवा की रक्षा बडे चाव से करियो॥
है यह नम्र मेमने से भी भीरु मृगी से बढ कर।
कडी बात या चितवन से यह कँप जाती है थरथर॥ ३॥
है गँवार यह भोली भाली, नहीं शिष्टता जाने।
तो भी यह गुरुजन की आज्ञा बडे प्रेम से माने॥

ꕥ Kamla's Letter के एक अंग्रेजी पद्य का अनुवाद। विवाह हो जाने पर लडकी की माँ, लडके की माँ को अपनी लडकी सौंप रही है। मूल अंग्रेजी कविता दक्षिण की है। यहां यह सार है।

साँचे में तुम इसे ढालियो, कभी न यह तड़केगी।
बहिन! सिखाने से चतुराई, बेटी सीख सकेगी॥ ४॥
यह गुड़िया, यह लक्ष्मी अपनी जीवन-मूल दुलारी।
हृदय थाम कर करती हूँ मैं अब आँखों से न्यारी॥
माता-नेह सोच तुम मन में दुख मेरा अनुमानो।
छुपै नहीं है प्रीति छुपाए, बहिन! सत्य यह जानो॥ ५॥
इसका रूप निहार दिव्य मैं पल पल सुख पाती थी।
गान समान सुरीली बोली इसकी मन भाती थी॥
बहिन! तुम्हें भी ये सब बातें जान पड़ेंगी आगे।
अपने नैन रखोगी इस पर जब तुम नित अनुरागे॥ ६॥
इसकी मद हँसी से मेरा सुख अतिशय बढ़जाता था।
कठिन घाव भी उससे दुख का अच्छा होजाता था॥
इसे उदास देख आँखों में भर आता था पानी।
छुपी नहीं है बहिन! किसी से माता प्रेम-कहानी॥ ७॥
बड़ी लालसा भी निज मन की इसने नहीं बताई।
कर सकोच कठिन पीड़ा भी अपनी सदा छुपाई॥
तो भी मैं सब लख लेती थी इसके बिना कहे ही।
यों ही तुम इसकी सब बातें, लखियो बहिन सनेही॥ ८॥
अपना मास पिण्ड देती हूँ मैं तन से कर न्यारा।
है यह जीवन मेरे जी का आँखों का है तारा॥
इस अनाथ बच्चे का पालन माता-सम तुम कीजो।
मेरी इस बल हीन दशा में बहिन! बाँह गह लीजो॥ ९॥
करो बहिन! स्वीकार दया कर मेरी इतनी विनती।
बच्चों में अपने तुम करियो इस बेटी की गिनती॥
दीजे बहिन! भरोसा मुझको हाथ हाथ में देकर।
बेटी-सम पालेंगी इसको हम माता सम होकर॥१०॥

मेरी ये आँखें पीती थीं नित जो रूप मनोहर ।
क्या उसके दर्शन का मुझको फिर न मिलेगा अवसर ॥
जिस बोली से धीरे धीरे इसे बुलाती थी मैं ।
क्या वह भी अब मूक रहेगी रख जी की जी ही में ॥११॥
हा मेरी अनमोल लाड़ली ! प्राणाधार ! दुलारी !
क्या तू मुझे नहीं समझेगी अब अपनी महतारी ॥
तुझे नई माता मिलती है, मैं तुझको खोती हूँ ।
यही सोच सुख में भी तेरे बेटी ! मैं रोती हूँ ॥१२॥
हाय ! आज से हुआ हमारा यह घर भरा अँधेरा ।
होकर निपट निरास न क्यों अब हृदय फटेगा मेरा ॥
अब मेरे इस सूने घर को उजला कौन करेगी ।
कौन मधुर बातों से मेरा रीता हृदय भरेगी ! ॥१३॥
कौन सुरीली बीन बजा कर, मधुर गीत गावेगी ।
घर में कौन लड़कियां छोटी न्योत न्योत लावेगी ॥
सखियों के संग कौन खायगी, खेलेगी, झूलेगी !
किसको सुन रामायण पढ़ते यह छाती फूलेगी ॥
हा बेटी ! हा गुड़िया मेरी ! हा मेरी सुकुमारी !
तेरे बिना हृदय यह मेरा पावेगा दुख भारी ॥
केवल दैव दयामय जो दुख जान सके है जन का ।
वही धीर दे दूर करेगा संकट मेरे मन का ॥१५॥
जा कर वहाँ दूर है बेटी ! मुझे भूल मत जाना ।
कभी कभी इस दुखिया की भी सुध निज मन में लाना ॥
रो मत, बेटी ! जा अपने घर, संग नई माता के ।
लीजे बहिन ! इसे अब मुझसे, देती हूँ सिर नाके ॥१६॥



पाण्डेय लोचन प्रसाद रचित।

वाल्यस्मृति। ❀

कौन ले गया लूट हाय! मम बाल-काल का सुख भाण्डार!
कहाँ प्रबल उत्साह, कहाँ अब गई हृदय की शान्ति समूल?
कहाँ सखा सङ्गिनी आदि का वह नैसर्गिक प्रेम अपार।
आख-मिचौनी, सुखद धूल-गृह-खेल कहाँ शैशव सुख मूल॥
चला गया वह समय हाय! इस जीवन को करके निःसार।
वही नयन, तनु वही, किन्तु है दृश्य आज जग के प्रतिकूल॥
मुझे, बाल-सङ्गिनी सखागण भी करते हैं हाहाकार।
इस जीवन के भीषण रण में पड़, निज निज सुख कर निर्मूल॥
शान्ति-पूर्ण उस बाल-काल के पावन सुख की होते याद।
शोक-अग्नि से तनु जलता है व्याकुल होतेहैं मन प्राण॥
स्थायी मुझे ज्ञात होता था पावन शैशव का आह्लाद।
था नहीं मेरे बाल हृदय को कुटिल काल की गति का ज्ञान॥
चिर बन्दी रोता है ज्यों नित सोच सोच निज गृह सुख-स्वाद।
त्यों मैं अब व्याकुल होता हूँ उस सुख का कर मन में ध्यान॥



रामदहिनमिश्र लिखित।

एक राजपूती झलक (सरस्वती से)

उदय सिंह के शक्त सिंह था प्यारा ढोटा,
प्रबल प्रतापी भट "प्रताप" का भाई छोटा।
था छोटा पर सभी काम थे उसके न्यारे,
जिन्हें देखकर मौन साहसी होते सारे ॥ १ ॥

कहता हूँ मैं एक कहानी उसकी चोखी,
छोटी है, पर है अतीव रसवनी अनोखी।
जिससे होगा व्यक्त अलौकिक साहस उसका,
और लगेगा पता पूर्ण उसके मानस का ॥ २ ॥

एक समय तलवार एक वन करके आई,
लगे देखने सभी वहाँ उसकी सुघराई।
करने उसकी जाञ्च लगे तब सूत फार कर,
पर न हुआ सन्तोष "शक्त" को उससे रुचिकर ॥ ३ ॥

आसन अपना छोड़ "शक्त" उठ खड़ा हुआ झट,
बोला मृदु गम्भीर वचन वह सुन्दर शिशु भट।
"जो अब से तलवार वीर कर में जावेगी,
नर यूथों का मास अस्थियुत यह खावेगी ॥ ४ ॥

इस प्रकार क्या ठीक परीक्षा इसकी होगी,
और आप की उचित कभी मर्यादा होगी।
धार परीक्षा करनी हो तो यों करिये फिर,
राजपूत की नाम कीर्ति हो जिससे सुस्थिर" ॥ ५ ॥

यों कह उसने छीन लिया वह खड्ग मनोहर,
हाँ हाँ कह सब लगे रोकने उसे उठा कर।
किन्तु रुका वह नहीं किसी के कुछ भी रोके,
रुका कहीं है दृढ़ प्रतिज्ञ जन उद्यत हो के॥ ६॥

उठा तुरत तलवार काट डाली निज उंगुली,
जिससे धर धर उष्ण रक्त धारा वह निकली।
किन्तु न इससे हुआ चित्त उसका कुछ विचलित,
और व्यथा के चिन्ह दिखाई पडे न किञ्चित॥ ७॥

पाच वर्ष का शक्त सिंह वह बालक था जब,
किया इस तरह कार्य कठिन दु साहस का तब।
रानावंशी नित्य कार्य ऐसे करते थे,
जिससे वे प्रक्रान्त वीर योधा होते थे॥ ८॥

कवियों का संक्षिप्त परिचय।

चंदवरदाई–ये जाति के वन्दीजन,दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहन के राजकवि और सखा थे। इनके जन्म मरण का समय संवत १२०५-१२४८ माना गया है। इन्होंने पृथ्वीराज का चरित्र अपनी ओजस्विनी कविता में एक वृहत् ग्रन्थ में लिखा है। उसका नाम है 'पृथ्वीराज रासो'। इनकी रचना कवित्वपूर्ण पर बड़ी जटिल है, इससे उदाहरण में एक ही पद्य दिया गया।

विद्यापति—इनके जीवन काल का समय संवत् १४०० का पूर्वार्द्ध है।। संस्कृत के अगाध पाण्डित्य रखने के कारण ये महामहोपाध्याय थे। संस्कृत में इन्होंने कई ग्रन्थ बनाये हैं। ये जैसे संस्कृत के महाकवि थे, वैसे हिन्दी के भी। इनकी कविता में कुछ मिथिला भाषा के शब्द हैं। इनकी मधुर पदावलियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं, और वे अ‍ संगृहीत भी हो चुकी हैं।

कबीर साहेब—इनके जीवन-काल का समय संवत् १४०० का शेषार्द्ध है। प्राय यही सब विद्वानों की राय है। इनका जन्म हिन्दू के घर और पालन पोषण मुसलमान के यहाँ माना गया है। इनके स्वामी रामानन्द के शिष्य होने की बात कही जाती है। मुसलमान होने पर भी इनके विचार हिन्दू के से थे। इनकी साखियों और भजनों के बड़े २ ग्रन्थ संगृहीत हुए हैं। इनकी कविता मनोहर, शिक्षापूर्ण और गम्भीर है। इनका एक अलग मत है जिसे 'कबीर पंथ' कहते हैं।

मीराबाई—इनका जीवन काल संवत् १५५५ से १६३० के बीच में माना गया है। आदि अन्त में केवल पाँच सात वर्ष का अन्तर है। ये जोधपुर घराने की कन्या थीं और उदयपुर के घराने में ब्याही गयी थीं। बालकपन से ही गिरिधर

माना जाता है। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। ये वीररस के महाकवि थे। इनकी कविताओं के पढने से जी फडक उठता है। इनका 'शिवराज भूषण' सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है और उसमें शिवाजी महाराज का वर्णन है। शिवाजी के दरबार में इनका बडा आदर था।

मतिराम—भूषण कवि के ये सगे भाई थे। इनका जन्म मरण १६७४-१७७३ के लगभग माना जाता है। ये श्रृङ्गार रस के कवि थे। इनके 'ललित ललाम' वगैरह कई काव्य प्रसिद्ध हैं।

देव—इनका जन्म १७३० और १८०२ के लगभग देहान्त हुआ। ये सनाढ्य ब्राह्मण थ। मिश्र बन्धुओं ने सूर और तुलसी के साथ इनकी गणना की है। इन्होंने पचासो ग्रन्थ बनाये हैं और सबके सब उत्तम हैं।

वृन्द—ये १७४१ के लगभग हुए। १७६१ तक इनका रहना एक ग्रथ में लिखा है। ये जाति के वन्दीजन और कृष्णगढ के महाराज के यहा रहते थे। इनका 'वृन्दविनोद सतसई' नामक एक सुन्दर नीतिमय ग्रन्थ है।

बैताल—इनका जन्म काल १७३४ संवत् माना जाता है। ये विक्रम शाह के दरबार में रहते थे। इनके नीतिमय छप्पय ही बहुत प्रसिद्ध हैं। कोई ग्रथ इनका अभी तक देखने में नहीं आया।

नागरी दास जी—इनका जन्म १७५६ और मरण १८२१ में हुआ था। ये कृष्णगढ के राजा थे। इन्होंने ७५ ग्रन्थ रचे हैं। कविता इनकी बडी मनोहर और मधुर होती थी।

श्रीहित वृन्दावन दास, जी—इनका जन्म १७०० के लगभग माना जा सकता है। ये जाति के ब्राह्मण थे। १८ हजार से अधिक छन्द इनके देखने में आये हैं। कहते हैं कि इन महात्मा ने लाखो पद रचे हैं। इनकी कविता बडी उत्तम है।

गिरधर कविराय—इनका भी जन्म १७०० सवत् के ही लगभग माना जाता है। इनकी कुण्डलियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं जो विशेषत. लोकोक्तियों पर बनी हुई हैं। इसी कारण वे बडी ही लोकप्रिय हैं। इनका छोटा मोटा एक दो सग्रह भी छपा है।

पद्माकर—इनका जन्म १७१० और स्वर्गवास १८६० म हुआ। ये तैलग ब्राह्मण थे। इनके जगद्विनोद, गगालहरी ग्रथ बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी कविता बडी मधुर और शब्दालङ्कारपूर्ण हैं। अनुप्रास की तो खूब ही बहार है।

ग्वाल—ये १६ वीं शताब्दी के शेषार्द्ध में थे। ये जाति के बन्दीजन थे। इनके छोटे बड बीसों ग्रन्थ हैं। ये भी पद्माकर ही के समान शब्दालङ्कार के प्रेमी थे और कविता में अनुप्रास की बडी भरमार रखते थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—आपका जन्म १६१७ में और शरीरपात १६४१ में हुआ। आपने १७ वर्ष से ही कविता करनी प्रारम्भ कर दी थी। आपके सब ग्रन्थ छ भागों में खड्गविलास प्रेस बाकीपुर से प्रकाशित हुए हैं। आपने प्राय गद्य पद्य बराबर ही लिखे और काव्य-नाटक इतिहास चरित्र आदि सब प्रकार के ग्रंथ लिखे और कई पत्र पत्रिकायें भी चलायीं। हिन्दी गद्य को आपसे बहुत सहायता मिली और आप ही के कारण उसकी बडी उन्नति हुई। आप को वर्तमान हिन्दी के जन्मदाता कहने में भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इसीसे आप नागरी नागर भी कहलाते हैं।

श्रीधर पाठक—इनका जन्म १६१६ में हुआ था। ये महाशय पञ्चम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति हुए थे। ये व्रज भाषा और खडी बोली दोनों के प्रसिद्ध कवि हैं।

अयोध्या सिंह उपाध्याय—आपका जन्म स० १६२२ में

आप हिन्दी के अच्छे लेखक और कवि हैं।
और गम्भीर से गम्भीर हिन्दी लिखते हैं और
ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों ही में करते हैं।
प्रास, ठेठ हिन्दी के ठाट आदि बहुत

लाला भगवान दीन—इनका जन्म १६३८ में
पद्य दोनों के सुयोग्य लेखक और कवि हैं। ।५
प्रशसनीय है।

प० रामचरित उपाध्याय—ये खड़ी बोली के
सुकवि हैं। आपका 'रामचरित चन्द्रिका'
महाकाव्य आदि बहुत प्रसिद्ध है।

बाबू मैथलीशरण गुप्त—खड़ी बोली के लिए
बड़ा नाम है इनके 'भारत भारती' 'जयद्रथ वध'
बड़े ही लोकप्रिय हो रहे हैं।

पं० गयादीन शुक्ल सनेही—ये भी खड़ी बोली
कवि हैं। यद्यपि खड़ी बोली में इनका कोई
निकला है तो भी सुदर कवितायें ही इन्हें
कह रही हैं।

रूपनरायन पाण्डेय—ये भी खड़ी बोली के ५
कवि हैं। हाल में इनका स्फुट कविताओं का
निकाला है।

श्रीयुत कामता प्रसाद गुरु—ये जैसे सुलेखक हैं वै
भी हैं। इनकी बहुत सी स्फुट कवितायें भिन्न
पुस्तकों में प्रकाशित हैं।

पाण्डेय लोचन प्रसाद—ये खड़ी बोली के बड़े,
हैं। इनके खड़ी वाली के कई काव्य प्रकाशित हो